ISSN 2582-0133
साइकिल
बच्चों का दुमहिया
वर्ष 3 अंक 6
फरवरी - मार्च 2021
मूल्य ₹125

वर्ष 3 अंक 6 फरवरी - मार्च 2021

अवधि	अंक	सदस्यता दर (पंजीकृत डाक शुल्क सहित)
एक साल	6	रु. 750
दो साल	12	रु. 1500
तीन साल	18	रु. 2250
		एक प्रति - रु. 125

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - आई.सी.आई.सी.आई बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630001028225, IFSC ICIC0006300
में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/order-publication/
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
ई-1/212, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016
फोन 0755-2446002/4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

छुट्टी वाला दिन

अनिरुद्ध उमट
चित्रः तापोशी घोषाल

मुझे छुट्टी वाले दिन
स्कूल जाना अच्छा लगता

उस दिन लेट होने का डर नहीं
यूनिफॉर्म की जगह कुछ भी पहनो
अपने साथ किसी को भी ले जाओ
गाय, तोता, साइकिल या माँ को ही

किसी भी कमरे में जाओ
जब मन बजाओ घण्टी
जब मन टिफिन खोल लो
ब्लैकबोर्ड पर बना दो कुछ भी

गणित और विज्ञान को स्टूल्स पर खड़े कर
पूछें सबसे मुश्किल बात
न देने पर उत्तर हाथ ऊँचा करने की सज़ा
और हम फेरें चॉक के स्वाद पर जीभ

छुट्टी वाले दिन स्कूल बच्चों की तरह लगता
मुझे उस बच्चे को दोस्त बनाना है
क्या वो भी मुझे दोस्त कहेगा

साड्डा हक ऐत्थे रख

इरशाद कामिल
चित्रः एलन शॉ

रणबीर कपूर, इम्तियाज़ अली और मैं बेंच पर बैठे चाय पी रहे थे। बेंच पक्की सीमेंट की थी और बातें कच्चे सपनों की। पक्की बेंच पर कच्ची बातें जिस चारदीवारी में हो रही थीं वो ए. आर. रहमान का स्टूडियो था।

बात उन दिनों की है जब हम 'रॉकस्टार' फिल्म का संगीत बना रहे थे। 'रॉकस्टार' का हीरो गायक था इसलिए अकसर रणबीर कपूर भी फिल्म संगीत बनने की प्रक्रिया का हिस्सा होता। वो समझना चाहता था कि जिस गाने को वो परदे पर गाने वाला है वो बना कैसे है। इम्तियाज़ ने कहा, "फिल्म में जॉर्डन का जो म्यूज़िक टूर है वहाँ हमें एक गाना चाहिए। ये गाना फिल्म में अलग-अलग जगह पर चलेगा। इसके बोल ऐसे हों कि हर जगह पे वो सच्चे लगें।" साथ ही ये भी कोशिश थी कि यह गाना सबसे जुड़े। सबको लगे कि ये मेरी ही बात है।

इन बातों के बीच मैं दूर अपने गाँव पहुँच गया...

मेरा गाँव किसानों और छोटे कारीगरों का गाँव था। उसे एक छोटा-सा शहर भी कह सकते थे। ज़्यादातर घर मुसलमानों के थे। इनमें कढ़ाई का काम, पंजाबी जूती बनाने का काम, पायजामा और सलवार के नाड़े और पराँदे (चोटी में बाँधने वाली डोरी) बनाने का काम आम था। मिठाई के लिए भी यह बड़ा मशहूर था। लेकिन ज़्यादा मशहूर था ताज़ा सब्ज़ियों के लिए। किसान खेत से सब्ज़ी तोड़ कर दोपहर बाद सब्ज़ी मण्डी में लाता था। जैसे-जैसे दिन ढलता रहता, उसकी सब्ज़ी का दाम कम होता रहता। वो आज की तोड़ी सब्ज़ी कल नहीं बेचना चाहता था। कल उसे ताज़ा सब्ज़ी लानी होती थी। इसी गाँव में एक स्कूल था - सनातन धर्म प्रेम प्रचारक हाई स्कूल।

मैं ख्यालों में अपने गाँव में गुमा था। उस वक्त मुझे लगा जैसे मैं दसवीं में पढ़ता हूँ और छुट्टी के बाद स्कूल से घर लौट रहा हूँ। साथ में मेरे दोस्त संजीव और ललित भी हैं। संजीव के पास साइकिल है। ललित और मैंने भी अपनी किताबें उसकी साइकिल के कैरियर में रखी हुई हैं। हँसी
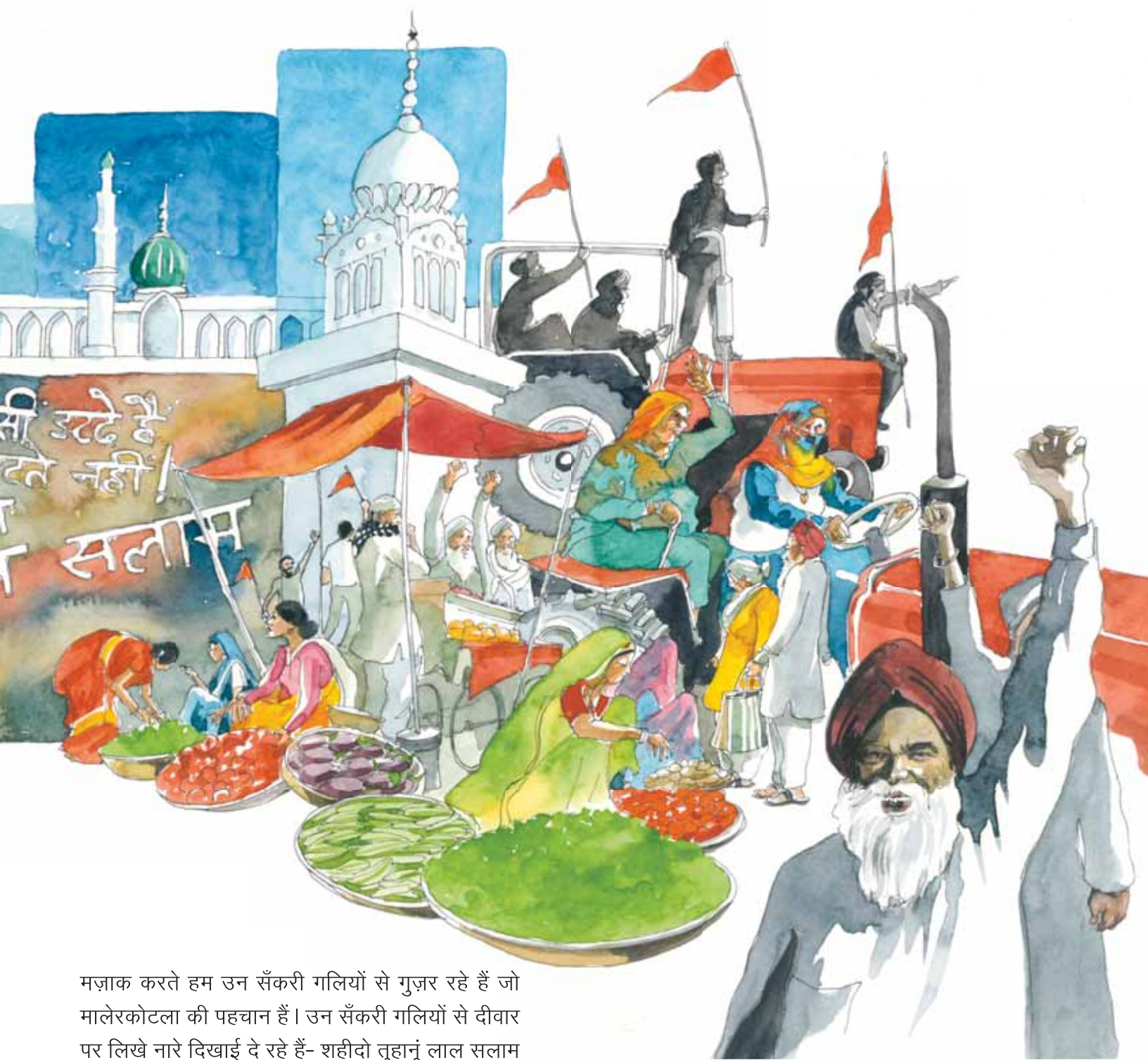
मज़ाक करते हम उन सँकरी गलियों से गुज़र रहे हैं जो मालेरकोटला की पहचान हैं। उन सँकरी गलियों से दीवार पर लिखे नारे दिखाई दे रहे हैं- शहीदो तुहानूं लाल सलाम (शहीदो आपको लाल सलाम), असी डटदे आं तां हटदे नई (हम डटते हैं तो हटते नहीं), साड्डा हक ऐत्थे रख। ये

उस समय के किसान-मज़दूर आन्दोलनों के नारे थे। तब मुझे ठीक से पता नहीं था कि आन्दोलन क्या होता है। क्यों होता है। बस, इतना ज़रूर देखा था कि कुछ किसान जुलूस की शक्ल में आते और किसी एक सरकारी ऑफिस की तरफ बढ़ जाते थे। अब समझ आता है कि शायद किसान अपने हकों-अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। आज भी किसान अपने हकों के लिए लड़ रहे हैं। तब भी हम उनको उनके हक दे नहीं पाए और आज भी उनसे उनके हक छीन रहे हैं।

मैंने दीवारों पर लिखा नारा याद करते हुए इम्तियाज़ और रहमान सर से पूछा कि क्या 'साड्डा हक ऐत्थे रख' गाना हो सकता है? रहमान सर ने पूछा, "इसका क्या मतलब है?" मैंने अँग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए कहा, "गिव अस अवर राइट्स, हमें हमारा हक दो।" सुनते ही इम्तियाज़ और रहमान सर के चेहरे खिल गए। उन्हें लगा यह हर उस इंसान की बात है जिसे उसका हक नहीं मिल रहा है। किसी समाज में, ऑफिस में या कहीं भी। मैंने इम्तियाज़ को यह राय भी दी कि इसे अलग-अलग जगह पर जाकर अलग-अलग लोगों के साथ फिल्माना चाहिए। इसे इसी तरह से फिल्माया भी गया। इस तरह पंजाब के एक पुराने किसान आन्दोलन का नारा 'रॉकस्टार' फिल्म का मशहूर गाना बन गया।

जो घूमता है, गिरता भी वही है...

लेख और चित्रः वृषाली जोशी

साइकिल चलाने की कोशिश में हम बार-बार गिरते-पड़ते-चोट खाते हैं। फिर अचानक एक क्षण हम साइकिल चलाने लगते हैं। उस क्षण मानो हम हवा में तैरने लगे हों। उस क्षण के बाद हम साइकिल चलाना नहीं भूलते। हाँ, साइकिल सीख लेने के बाद भी गिरने के मौके आते रहते हैं।

शायद इसीलिए जापानी भाषा में जब जितेनश्या यानी साइकिल को चित्र-लिपि में लिखते हैं तो उसमें गिरने का चित्र अक्षर भी शामिल होता है। यानी घूमने को गिरने से अलगाया नहीं जा सकता।

जापानी में साइकिल को इस तरह लिखा जाता है –

जी तेन श्या

खुद घूमना/गिरना वाहन

यानी घूमने और गिरने दोनों के लिए एक ही चित्र-अक्षर होता है-転

शायद इसलिए कि जो घूमता है वही तो गिरता भी है।

प्रफुल्ल राय
अनुवादः यायावर
चित्रः अतनु राय

पाँचू जैसा आलसी और निकम्मा चोर देश में दूसरा नहीं है। न ही कोई होगा। सम्भव ही नहीं है। वह बहुत ही आरामी है। बैठा है तो बैठा ही है। बीड़ी फूँक रहा है तो बीड़ी ही फूँकता जा रहा है। एक करवट लिए सोया है तो सारी रात उसी तरह बिता देगा। उसे लगता है कि दूसरी करवट बदलने के लिए क्यों बेमतलब मेहनत करे। अगर वह सोचे कि सुबह बाज़ार जाएगा तो बाहर निकलते-निकलते दोपहर हो जाती है। एक जगह से हिलने-डुलने का उसका मन ही नहीं होता है। क्या खाना, क्या घूमना, क्या चोरी के लिए जाना! उसमें किसी बात का कोई उत्साह नहीं।

इस बात पर घर में पत्नी से उसकी खटपट चलती रहती है। नृत्यकाली भवा चोर की लड़की है। भवा चोर की ख्याति सारे देश में फैली हुई है। नृत्यकाली के भाई भी नामी चोर हैं। केवल बाप-भाई नहीं उसके दादा, जेठ, फूफा, मौसा सब चोरी विद्या में निपुण हैं। ऐसे नामी परिवार की लड़की को पाँचू जैसे नाकारे और आलसी का साथ बदा था।

नृत्यकाली के बाप और भाई बड़े-बड़े घरों में रहते हैं। अँधेरी रातों में घरों में घुसकर खूब-खूब सोना, हीरे, जवाहरात लेकर आते हैं। खीर, रबड़ी, पुलाव, रोहू मछली का माथा, चीतल का मांस, उनके घर में क्या तो नहीं पकता रहता है। नृत्यकाली की माँ और भाभियाँ कीमती जामदानी और बनारसी साड़ियाँ पहनती हैं। गहनों से लदी रहती हैं। नृत्यकाली पाँचू के साथ मिट्टी के घर में रहती है। छत टीन की है। लाल मोटा भात भी दोनों समय तकदीर से ही जुट पाता है। नहीं तो भूखे रहो। तंगी का आलम रहता है। बाप-भाई, माँ और भाभियाँ नृत्यकाली को सब कुछ देना चाहते हैं। मगर उसे वह ठीक नहीं लगता। उसे यह बात अपने घर की तौहीन लगती है। पाँचू से उसे गहरा लगाव है। पाँचू बहुत आकर्षक है। एकदम राजपुत्र। किन्तु कौन जानता था वह इतना आलसी है? उसके साथ नृत्यकाली की शादी करके माँ-बाप माथा पीटते हैं। बीच-बीच में धमकी भी देते हैं। जमाई है इसलिए मारपीट नहीं करते।

आज दोपहर पाँचू के साथ नृत्यकाली का फिर झगड़ा हुआ। घर में फाके की नौबत आ पहुँची थी। आज अगर गृहस्थ घर से पाँचू कुछ चोरी कर न लाए तो कल से उपवास।

झगड़ा जल्द ही खतम हो गया। उदास पाँचू दीवार से पीठ टिकाए निढाल बैठा है। नृत्यकाली बहुत गुस्से में है। यह कहती हुई अपने मायके चली गई कि अगर आज कुछ न लाए तो उसे अपनी सूरत भी न दिखाना।

गाँव के एक सिरे पर नृत्यकाली का घर है। और दूसरे सिरे पर बाप का घर। रोज़ एक बार वहाँ न जाने पर उसका भात हज़म नहीं होता।

नृत्यकाली तो चली गई। पाँचू देर तक गालों पर हाथ टिकाए, आकाश की ओर ताकता चुपचाप बैठा रहा। पेड़ों की आड़ में सूरज डूबने लगा। शाम घिरने को आई। तो पाँचू ने तेल की कटोरी और सिन्दकाठी की ओर देखा। नहीं... और बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। थोड़ी देर में अँधेरा हो जाएगा। गाँव के लोगों के पास पैसा नहीं है। पाँचू को चोरी करने के लिए पाँच मील दूर शहर जाना पड़ेगा। वहाँ जाकर किसी बड़े घर में चोरी कर वापस आते-आते रात बीत जाएगी। पाँचू की आज बाहर जाने की बिलकुल इच्छा नहीं थी। पर अब घर बैठे रहना सम्भव नहीं है।

पाँचू ने अपने शरीर पर सरसों का तेल मला। इससे घर में कोई उसे पकड़ ले तो वह छूटकर भाग सकेगा। उसने हाफ पेंट और बनियान पहनी। उस पर कुर्ता पायजामा पहना। घर में घुसने से पहले वह कुर्ता पायजामा खोलकर कहीं रख देगा। इससे भागने में सुविधा होगी। उसने सिन्दकाठी ली और निकल पड़ा।

जब वह शहर पहुँचा, काफी रात हो गई थी। इस रास्ते, उस रास्ते जाकर उसने कई घरों में ताक-झाँक की। मगर भीतर बत्ती जल रही थी। लोगों की बातचीत सुनाई दे रही थी। लोग जागे हुए थे। घर के लोगों के सो जाने पर ही तो घर में घुसा जा सकता था। वह गाँव से पाँच मील चलकर आया है। फिर इन गलियों में कब से घूम रहा है। वह बहुत थक गया है। वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। सोचा, यहीं सोकर रात बिताए और कल सुबह वापस गाँव चला जाए। पर अगले ही पल ख्याल आया, किसी घर से कुछ दामी हथिया कर न ले जाने पर नृत्यकाली उसका खून कर देगी। इसलिए थोड़ा आराम कर वह बेमन से उठ बैठा। इधर-उधर घूमा। लेकिन आज तो शहर के लोगों ने जैसे कसम खा रखी हो कि ज़रा भी नहीं सोएँगे। ये लोग क्यों जगे बैठे हैं?

पाँचू को ज़्यादा चलना-फिरना, भाग-दौड़ पसन्द नहीं है। बस बैठे रहने या सोने की इच्छा बनी रहती है। पर ऐसा सोचते ही नृत्यकाली की याद हो आती है।

लोग सो नहीं रहे तो भी कुछ न कुछ तो करना ही होगा। पाँचू ने कुर्ता पायजामा उतार कर रखा और एक घर के चबूतरे पर बैठ गया। सामने के घर के एक कमरे में रोशनी जलाए कुछ लोग हें हें करते ताश खेलते नज़र आए।

वह थोड़ी देर उन्हें देखता रहा, फिर बोला, "ओ महाशय, ज़रा सुनेंगे?" खिड़की से पाँचू की ओर देखते सभी एक साथ बोल उठे, "कौन, कौन है रे?"

"मैं। मैं हूँ पाँचू। और कितनी देर आप लोग ताश खेलेंगे?"

उनमें से एक बोला, "ये कैफियत क्या तुझे देनी होगी?"

पाँचू दाँतों के बीच जीभ काटते हुए बोला, "अजी ना! बात यह है कि ज़्यादा रात तक जागना स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं।"

"तू जो जगा हुआ है?"

"मेरा तो देर रात का ही काम है। चलिए, अब सो जाइए। आप लोगों के न सोने से काम शुरू नहीं कर पा रहा हूँ।"

"ओ रे पाजी, समझ गया, तू चोर है। ऐ चलो, पकड़ो तो बेटे को।" बोलते हुए वे उठ गए।

इन्होंने पकड़ लिया तो एक भी हड्डी नहीं बचेगी। यह समझते पाँचू को देर न लगी। डर कर वह तुरन्त चबूतरे से कूदा और शर्ट पायजामा उठा कर भागा। अगले मोड़ के किनारे एक घर की आड़ में छिप गया। ताश खेलने वालों को बहुत खोजने पर भी जब उसका पता नहीं चला तो वे वापस लौट गए।

आज का दिन ही खराब है। देर तक वह आड़ से बाहर नहीं निकला। घूमते-घूमते पाँचू की नज़र एक तिमंज़िले घर पर गई। वहाँ अँधेरा छाया हुआ था। कोई आवाज़ भी नहीं। यानी सब सो गए हैं।
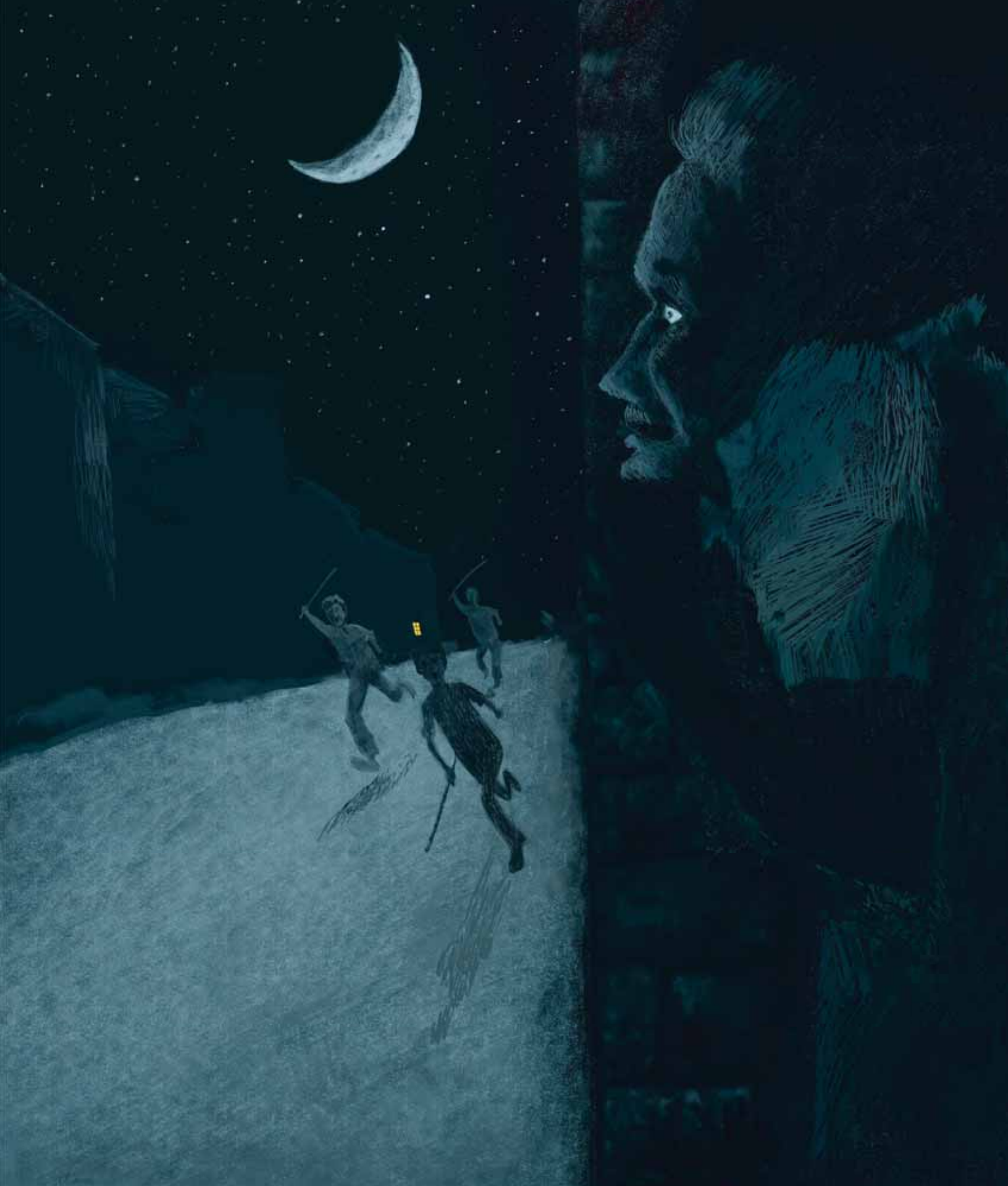
पाँचू घर के सामने कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। सोचने लगा कि अन्दर गया तो किसी मुश्किल में तो नहीं पड़ जाएगा! उसे लगा ऐसा कोई डर नहीं। वह लोहे के ऊँचे गेट पर चढ़ा और दूसरी तरफ उतर गया। फिर बिल्ली की तरह चुपचाप आगे बढ़ा। पानी के मोटे पाइप पर चढ़ कर दूसरी मंज़िल पर देखा एक खिड़की खुली हुई है। और क्या आश्चर्य, उसमें जाली नहीं है। पाँचू मन ही मन खुश हुआ। चोरों के देवता तस्करेश्वर इतने समय बाद उस पर मेहरबान हुए हैं। तपाक से पाँचू खिड़की से अन्दर जाकर एक दीवाल से पीठ टिका खड़ा रहा। गहरे अँधेरे का अभ्यस्त हो जाने पर देखा बीच में एक बहुत बड़े बरामदे जैसी जगह को घेरे चार-पाँच कमरे हैं और हर कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द है। बरामदे में लकड़ी और काँच की अलमारियाँ हैं और एक दीवाल पर कीमती घड़ी है।

जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं है। इस घर के लोग थोड़ी देर पहले ही सोए हैं। नींद और थोड़ी गहरी हो ले। मैं भी परेशान हो गया हूँ। थोड़ी देर आराम कर लूँ फिर काम शुरू किया जाएगा।

दीवाल से पीठ टिकाते ही उसे नींद आ गई। कितना समय बीत गया उसे होश नहीं था। दीवाल घड़ी ने टन् टन् कर दो घण्टे बजाए तब पाँचू की नींद खुली। वह आँखें मलकर उठ खड़ा हुआ। और देरी करना ठीक नहीं होगा।

वहाँ दो दीवारों से लगी हुई चार अलमारियाँ थीं। दो लकड़ी की और दो काँच की। धीरे-से वह उस ओर चला। अलमारियों में ताला नहीं है। खींचते ही पल्ला खुल जाता है। किसी के भीतर रज़ाई, काँथा, कम्बल है, किसी के भीतर पहनने के कपड़े। एक काँच की अलमारी में चीनी मिट्टी के बर्तन भरे हुए हैं। दूसरी में ताँबे और काँसे के कटोरी, गिलास और थालियाँ - यही सब।

रज़ाई, काँथा और पुराने कपड़े ले जाने का कोई मतलब नहीं है, वह सब कोई नहीं खरीदेगा। ताँबे-काँसे के बर्तन और दीवाल घड़ी कीमती है। पाँचू ने मन ही मन तय किया कि ज़्यादा लालच ठीक नहीं। घड़ी और ताँबे, काँसे के बर्तन लेकर वह चला जाएगा।

बर्तन बाँधने के लिए उसने दो कपड़े निकाले। एक कोने में एक ऊँची तिपाई थी। उसे खींच लाया और दीवाल घड़ी उतारी। यह सब करते-करते वह थक गया। थोड़ा आराम कर कपड़ा बिछा बर्तन और घड़ी को जमा कर बाँध रहा था। तभी दाहिने ओर के कमरे से कोई बाहर आया। और पाँचू को देख चिल्ला उठा, "चोर चोर..." इसके साथ ही हलचल शुरू हो गई।

घर की सारी बत्तियाँ जल गईं। सब कमरों के दरवाज़े खोल सब लोग बाहर आ गए। सब मिल पाँचू को लात-घूसे मारने लगे।

पाँचू जितना आलसी उतना ही डरपोक था। दोनों हाथों से खुद को बचाते, रोते हुआ बोला, "मारिए मत। सारा दिन मेहनत की है। उस पर से इतना पिटने से प्राण नहीं बचेंगे।"

एक आदमी गरजा, "मारें नहीं तो क्या तुमको गोद में बिठा खीर खिलाएँ? बेटा चोर..." दुमंज़िला पर जब यह हल्ला-गुल्ला हो रहा था तिमंज़िला से किसी की आवाज़ सुनाई दी "क्या हुआ रे? आधी रात को इतना चिल्ला-चिल्ली क्यों कर रहे हो?"

जो पाँचू को मार रहे थे वो एक साथ बोले, "घर में चोर घुसा है। हम ज़रा उसकी धुलाई कर रहे हैं।"

तीसरी मंज़िल से घर के मुखिया की फिर आवाज़ आई, "कैसा चोर? एक बार देखूँ, ऊपर ले आओ बच्चू को।"

पाँचू डर गया। लड़के जब ऐसा कर रहे हैं तो इनके बाबा के हाथों उसकी क्या हालत होगी? किन्तु भागने का कोई उपाय नहीं। बचपन में एक नाटक देखा था 'अभिमन्यु वध', महाभारत में अर्जुन के लड़के अभिमन्यु को सप्तरथी घेरकर मार रहे हैं। उसकी भी यही हालत हुई है। जिस फन्दे में पड़ा है, उससे ज़िन्दा बाहर निकलना असम्भव है।

सब मिलकर उसे ऊपर ले गए। वहाँ एक बड़ी खाट पर एक बुज़ुर्ग लेटे हुए थे।

पाँचू को देखते हुए उन्होंने पूछा, "तेरा नाम क्या है?"

पाँचू ने काँपते-काँपते नाम बताया।

"कहाँ रहते हो?"

पाँचू ने वह भी बताया।

"तो बाबू आधी रात को घर में घुसकर सामान हथियाए बगैर चलता नहीं?"

पाँचू ने कहा, "क्या करूँ बाबू, इसे छोड़ कोई और काम तो सीखा नहीं।"

मुखिया बोले, "चोरी विद्या, महा विद्या अगर पकड़े न जाओ। तो पकड़ में आया क्यों?"

मुखिया के साथ बात करते हुए पाँचू का डर दूर हो गया। भला आदमी लगा उसे। बोला, "मैं बहुत आलसी हूँ। चटपट कोई काम कर नहीं सकता। आपके घर में कब का घुसा था। उसके बाद बहुत देर आँखें बन्द किए आराम करता रहा। और कोई होता तो सामान लेकर कब का भाग गया होता। आलस के कारण पकड़ा गया।"

मुखिया की नींद से भरी आँखें इस बार पूरी खुल गईं। सिर से पाँव तक पाँचू को देखा और बोले, "बाबा, लोग मुझे कहते हैं आलसियों का राजा। दिन-रात बिछौने पर पड़ा रहता हूँ। अब जाकर मिला मेरा जोड़ीदार! गृहस्थ के घर चोरी करने आए और सुस्ताने बैठा रहे, यह पहली बार देखा। तेरे साथ बात करके बहुत अच्छा लगा। आलसी है इसलिए तुझे माफ कर दिया। जा धीरे-से घर चला जा।" फिर उसने लड़कों से कहा, "उसे और मत मारो।"

पाँचू उठने का नाम नहीं ले रहा था। मुखिया ने पूछा, "क्या हुआ रे, घर नहीं जाएगा?"

हाथ जोड़कर पाँचू बोला, "खाली हाथ घर लौटने पर मेरी पत्नी नृत्यकाली दराँती से मेरा गला काट देगी।"

मुखिया बोले, "यह तो बड़ी चिन्ता की बात हो गई। तो एक काम कर, किसी और घर से कुछ हथिया ले जा।"

सकुचा कर पाँचू बोला, "यहीं शाम से बड़ी मेहनत करनी पड़ी है बाबू। मेरे हाथ-पाँव टूट रहे हैं। अब दूसरे घर में जाऊँ और वहाँ भी तो पकड़ा जा सकता हूँ। सभी तो आप जैसे दयालु नहीं हैं। मारकर मेरी चमड़ी उधेड़ देंगे।"

मुखिया बहुत चिन्तित हो गए। बोले, "झमेले में पड़ गया, देखता हूँ।"

पाँचू मौका देखकर बोला, "रुपया-पैसा, बरतन-वरतन कुछ न ले जाने पर बचूँगा नहीं। आपके पाँव पड़ता हूँ, कुछ करिए।" उसने सचमुच बाबू के पाँव पकड़ लिए।

थोड़ा सोचकर मुखिया बोले, "ठीक है ताँबे-काँसे के थोड़े बरतन कपड़े में बाँधकर लेजा। खबरदार दीवार घड़ी मत लेना। वह मेरे दादाजी की है।"

मुखिया के लड़कों ने खूब हल्ला मचाया। वे चोर को इस तरह प्रोत्साहन देने को राज़ी नहीं थे।

मुखिया ने उन्हें समझाया, "पाँचू आलसी है इसलिए क्या भूखा मरेगा? आहा, भगवान का जीव है। तुम लोग इसको लेकर हंगामा मत मचाओ।"

लड़के मजबूर थे। बाबा की बात सुन चुप हो गए।

इधर पाँचू बाबा के पाँव पकड़े रहा। उन्होंने हैरानी से पूछा, "अब क्या है रे?"

पाँचू रोते-रोते बोला, "बाबू माल उठाकर इतना लम्बा रास्ता चलने की ताकत मुझमें नहीं है। अगर बरतन पहुँचा दें तो...।"

परेशान कर दिया, देखता हूँ। फिर बाबू ने एक लड़के को बुलाया और कहा, "जा पाँचू के घर ये सामान छोड़ आ।"

बाबा को लड़के बहुत मानते थे। जिसको कहा गया वह बरतनों को लादे पाँचू के साथ उसके गाँव रवाना हुआ।

यह बहुत पहले की बात है। मुखिया की तरह समझदार, दयालु मनुष्य और पाँचू जैसे आलसी चोर अब दिखाई नहीं देते।
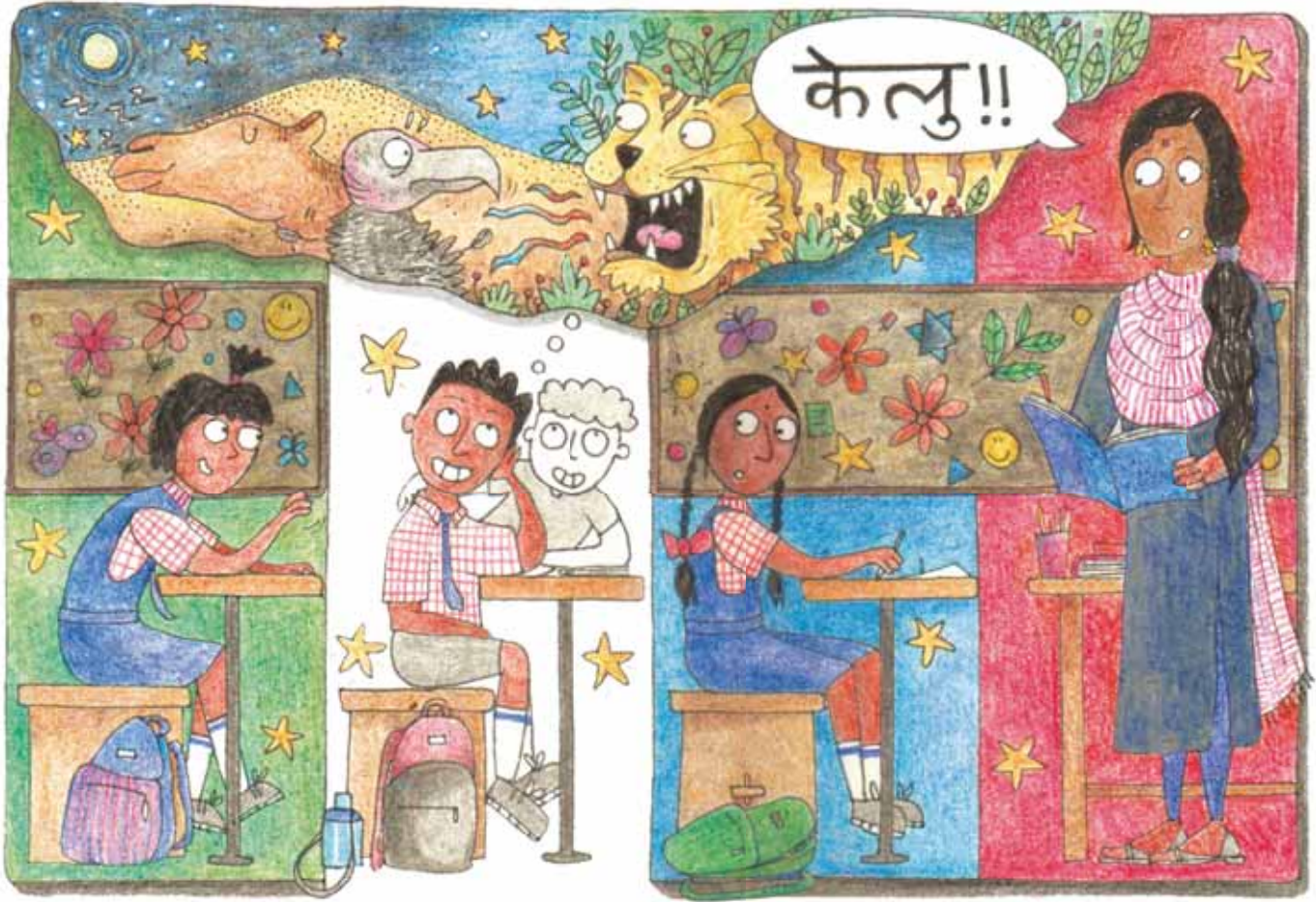
केलु का दोस्त

श्वेता नम्बियार
अनुवाद : निधि गौड़
चित्र : लिज़ा जॉन

केलु का एक दोस्त था जिसे सिर्फ केलु ही देख सकता था। जैसे, दुनियाभर की ज़्यादातर दोस्तियों में होता है। केलु को याद नहीं वो कब और कहाँ मिला था। यह दोस्त हर जगह, हर समय उसके साथ रहता। दोनों बातें करते रहते। केलु का दोस्त उसे क्या-क्या तो नहीं बताता था। कि रेगिस्तान में रात कैसे बिताते हैं? कि ट्रेन की छत पर बैठ सफर करना कैसा लगता है? कि बाघ की साँसें कितनी बदबूदार होती है? और कि गिद्ध कैसे किसी जीव को खा जाता है?

इन कहानियों का कोई अन्त नहीं था। केलु इन कहानियों में खो जाता। और उसे होमवर्क पूरा करने का समय ही न होता। खाना खा लेता तो बरतन धोना भूल

जाता और कभी-कभी तो वह कंघी करना भूल जाता। स्कूल में टीचर सवाल पूछते पर उसका ध्यान तो कहीं और ही बना रहता। वह खोया रहता।

एक दिन उसके अदृश्य दोस्त ने कहा कि लोग जैसे दिखते हैं वैसे होते नहीं हैं। कोई अन्दर से पानी जैसा हो सकता है और वही बाहर से तपती भट्‌टी जैसा। कोई जो बाहर से पत्तियों जैसा नाज़ुक लग रहा होगा, वही भीतर से पत्थर जैसा सख्त हो सकता है। केलु ने यह बात अनसुनी कर दी। केलु का दोस्त इस बात से नाराज़ हो गया। उस रात वो केलु की मेज़ के कॉकरोच पर सवार हो उड़ गया। फिर कभी नहीं लौटा।

इस दोस्त के जाने के बाद केलु का ध्यान अपने आसपास की चीज़ों पर जाने लगा। उसे ध्यान आया कि उसका नाम केलु है। अब वह अलग-अलग खाना खाता तो उनके स्वाद पर उसका ध्यान जाता। उसने गौर किया कि स्कूल अलग है और घर अलग है। दोनों के अपने नियम हैं। हर दिन वह कुछ नया देखता। नया सीखता। नया समझता। पिछले साल तक स्कूल में सिर्फ दो ही विषय थे। और इसीलिए दो ही टीचर थे। इस साल उसे तमिल, गणित, विज्ञान, समाज विज्ञान, पी.टी., उर्दू वगैरह पढ़ने थे। इन विषयों को पढ़ाने वाले अलग-अलग टीचर थे। वो नई चीज़ें सीखने के लिए पूरी तरह से तैयार था। उसे अब

चीज़ें पल्ले पड़ रही थीं।

एक दिन कमला टीचर गुणा सिखा रही थीं। सिखाते-सिखाते वे एक हिन्दी गीत गुनगुनाने लगीं। वह शायद कोई सैड साँग था। गीत सुन कुछ बच्चे मुस्करा उठे। टीचर समझ नहीं सकीं कि बच्चे क्यों मुस्करा रहे हैं। उन्हें लगा जैसे कि वे उन पर हँस रहे हैं। उन्होंने उन बच्चों को क्लास से बाहर कर दिया। वे पढ़ाती रहीं और बीच-बीच में वह गीत गुनगुनाती रहीं। इसी गुनगुनाहट में अचानक गणित का भी कुछ बड़ाबड़ा देतीं। इस गुनगुनाहट का कोई राज़ था। यह राज़ कोई नहीं जानता था। मगर केलु जानता था।

मिस्टर फर्नांडिस तमिल पढ़ाते थे। बोर्ड पर वे तमिल लिखते तो उसमें नावें, डांसर, पेड़ और बादल नज़र आते। जैसे ही बच्चे चित्रों की तरफ इशारा करके मिस्टर फर्नांडिस से पूछते कि वो शब्द क्या है वो फौरन उस शब्द को मिटा देते। मिटाकर कहते कि जल्दी उतार लिया करो। कभी वो खिड़की के बाहर देखने में खो जाते। खोए रहते। केलु ने उनसे सीखा कि खोया हुआ हाथी कैसे बनाते हैं। और उड़ता हुआ मेंढक और अधेड़ आदमी कैसे बनाते हैं। उसे पता था कि टीचर को तमिल पढ़ाने से ज़्यादा रस चित्र बनाने में आता है।

दोलक डोलता रहता। प्रयोग चलता रहता। और मिस्टर फैज़ भी डोलते रहते। अचानक उन्हें लगता कि कोई उन्हें डोलते देख रहा है। वे सजग हो जाते। उनका थिरकना रुक जाता। हालाँकि बच्चों को उनकी थिरकन अच्छी लगती। थिरकते तो उनके शरीर की लोच पता चलती। बच्चे देखकर खुश हो जाते। वे मुस्करा उठते। थिरकते हुए वे विज्ञान पढ़ाते। केलु जानता था कि टीचर को विज्ञान से ज़्यादा मज़ा नाचने में आता है।

केलु को अपने दोस्त की याद आई। वह सोचता रहा कि गणित के टीचर ने उन्हें कभी गाना क्यों न सिखाया? तमिल के टीचर ने कभी चित्रकारी क्यों नहीं सिखाई? और विज्ञान के टीचर को जब इतना शानदार डांस आता है तो उन्होंने कभी बच्चों को नाचना क्यों न सिखाया?

लोगों को बाहर कुछ और अन्दर कुछ और होना पड़ता है। केलु ने शीशे में खुद को देखा। उसके पीछे एक अदृश्य दोस्त खड़ा था। एक नई कहानी के साथ।

चित्रः तापोशी घोषाल

Dear School,

कैसे हो तुम? इन दिनों मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है। क्या तुम्हे भी मेरी याद आती है? कितने दिन हो गए तुम से मिले हुए! लगभग एक साल!

अपने दोस्तों और टीचर से तो ऑनलाइन क्लास में मिल लेती हूँ, पर तुम से मुलाकात नहीं होती। तुम्हारे साथ बिताया हर दिन एक हिन्दी फिल्म की तरह होता था। जिसमें हँसना, रोना, मस्ती करना, लड़ना, आदि सबकुछ होता था। क्या करते हो इन दिनो? कैसे बीतता है पूरा दिन?

क्या अभी भी सारी क्लासों से शोर सुनाई देता है? कॉरीडोर से बच्चों के दौड़ने और चिल्लाने की आवाजे आती हैं? प्लेग्राउण्ड से झूलो की चूँ-चूँ, चीं-चीं की अवाजे सुनाई देती हैं? क्या क्लास में अचानक से कोई टीचर 'साईलेंस' बोलती हैं? क्या वॉश रूम के बाहर बाई जी अभी भी बेठी रहती हैं? कक्षा में कबूतर अभी भी गुटर गूँ करते हैं? लंच टाइम पर खाने की खुश्बू चारो तरफ से आती है क्यां? टीचर के जाते ही व्हाईट बोर्ड को साफ करने के लिए बच्चो के बीच झगड़ा होता है क्या? क्या बच्चे टीचर के पीछे से उनकी ड्राअर में ताँक-झाँक करते हैं? टीचर के क्लास में आते ही कमरा खुश्बू से महक उठता हैं क्या? क्या इधर-उधर भागते बच्चे प्रिंसिपल मैंम को देखते ही भोले-भाले और मासूम बन जाते हैं? डाँट से बचने के लिए कितने बच्चे पेट दर्द का बहाना बनाकर मेडिकल रूम में आराम फरमाते हैं? लाईब्रेरी में किसी एक ही किताब को पढ़ने के लिए बच्चे झगड़ते हैं क्या? क्या असेंम्बली के समय बच्चे अभी भी दाँतो से नाखून काटते हैं? क्या छुट्टी के वक्त बसो और वैनो की चिल-पों और रेलम-पेल होती हैं?

मुझे ये सब जानना हैं, प्लीज जल्दी बताना और हाँ यह भी बताना कि हम फिरसे कब मिलेंगे?

तुम्हारी दोस्त
अवधारणा सिंह (11 वर्ष)
कक्षा-6
एम.एस.बी.एस. स्कूल
जयपुर

चित्रः तापोशी घोषाल

कितना नमक ज़रूरी है?

दिलीप चिंचालकर

फोटो : फरहाद कॉन्ट्रैक्टर

हिरण के सींग की बनी खिल्ली
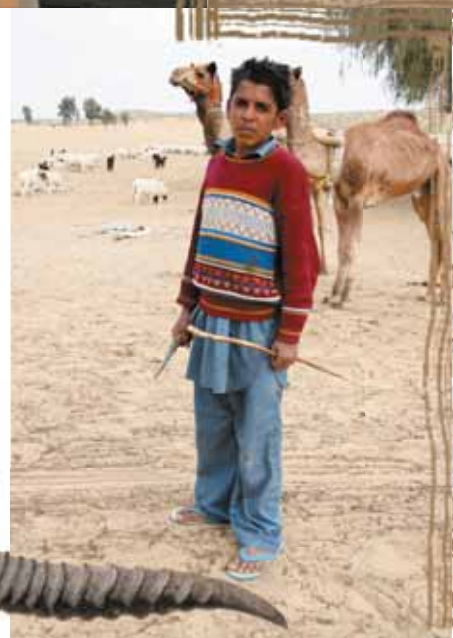
अगो ऽऽऽ कट खिल्ली नाका ऽऽऽ ध्यैं!

कोदराज कोई जादूगर नहीं। लेकिन उसके इस मंत्रोच्चार के साथ एक मशक भर पानी भरभराकर कुण्ड में बह निकलता है। पौ फटने के साथ ही वह रह-रहकर इस मंत्र का जाप कर रहा है। कुण्ड में काफी पानी आ चुका है। मगर शाम तक भी कुण्ड भरेगा नहीं। क्योंकि पानी बाहर खेली में भी छोड़ा जा रहा है। वह जानवरों के लिए है। दो-पाँच या पच्चीस-पचास नहीं, सैंकड़ों भेड़-बकरियाँ, ऊँट-मवेशी आते जा रहे हैं और पानी पीकर दुम फटकारते हुए लौट रहे हैं।

कोदराज एक ही बार में कुण्ड भर देने का कोई मंत्र क्यों नहीं बोल देता! वह इसलिए क्योंकि पानी मंत्र से नहीं
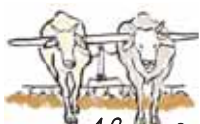
एक जोड़ी
ऊँट कुएँ की
दीवार से कोई
एक सौ कदम
दूर जाते...

भरता। दो मंत्रोच्चार के बीच एक जोड़ी ऊँट कुएँ की दीवार से कोई एक सौ कदम दूर जाते हैं। सौ कदम पूरे होते ही पानी से भरा चड़स कुएँ की जगत पर आ जाता है। जैसे ही चड़स ऊपर आने को होता है कोदराज का मंत्र शुरू हो जाता है। और जैसे ही वे 'कट खिल्ली' कहते हैं लूणसिंग उस खिल्ली को खींचकर अलग कर देता है जो चड़स को ऊँटों से जोड़ती है। और 'ध्यैं' की आवाज़ के साथ चड़स में भरा 65 लीटर पानी बाहर कोठे पर फैल जाता है। कोठा जगत से लगा बड़ा-सा फर्श है। इस पर से बहकर पानी कुण्ड में चला जाता है। जानवरों की संख्या देखकर खेली में कम ज़्यादा पानी भरा जाता है।

...सौ कदम पूरे होते ही पानी से भरा चड़स कुएँ की जगत पर आ जाता

गर्मियों में यहाँ तापमान 51-52 डिग्री तक पहुँच जाता है। लेकिन कुएँ का पानी एकदम ठण्डा बना रहता है अधिकतम 20 डिग्री। तभी तो जानवर दूर-दूर से गरदन हिलाते हुए यहीं चले आते हैं। यहाँ के पशुपालक भी इस बात को समझते हैं। ये लोग बारी-बारी से पानी खींचने का काम करते हैं। आज जुगत सिंग के परिवार की बारी है। कोदराज और लूणसिंग उनके पोते हैं। मंत्र बोल-बोलकर मन बहला रहे हैं और काम भी कर रहे हैं।

साठ गर्मियों की धूल खाए जुगत सिंग के चेहरे पर खेजड़ी की छाया धूप-छाँव खेल रही है और झबरीली मूँछों के नीचे मुस्कान। बेटे ऊँट चरा रहे हैं और पोते ढोरों की सेवा कर रहे हैं। फोग की टहनियों से बनी झोपड़ी से बहू निकलती है और उन्हें कटोरा थमा जाती है। कटोरे में ऊँटनी के दूध से बनी छाछ में बना बाजरे का राबड़ा है। खाना खाकर वे कुएँ पर पानी पीते हैं। और फिर वही सन्तोष उनके चेहरे पर पसर जाता है। उनका जीवन निश्चिन्त है और कुएँ का पानी मीठा। दोनों में उतना ही नमक है जितना जीने के लिए आवश्यक है।

चड़स ऊँट के चमड़े का बना है और खिल्ली हिरण के सींग की। 'ध्यैं' के बाद चड़स वापस गहरे कुँए में छपाक-से जा गिरती है। ऊँट भी मज़े से चलते हुए मिनट भर में कुएँ तक आ जाते हैं। और फिर वही मंत्र...।

यह ईसावल का कुआँ बाड़मेर राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी छोर पर है। पाकिस्तान की सीमा मील भर पर ही है। गश्ती टोह लेने वाले बगैर चालक के विमान की गुनगुनाहट अकसर गूँजती रहती है यहाँ। थार के इस रेगिस्तान में दूर-दूर तक कहीं पानी नहीं है। भेड़ें 20 मील दूर से चलकर ईसावल कुएँ पर पानी पीने आती हैं। जहाँ चरागाह हैं वहाँ पानी नहीं और जहाँ पानी है वहाँ चारा नहीं। इसलिए सातों दिन बारहों महीने इन भेड़ों का यही नियम रहता है। पानी पिया अब घास खाने जाएँगी। घास खाएँगी फिर पानी पीने लौटेंगी।

दिलीप चिंचालकर की चित्रकारी और लेखन की एक झलक इस अंक में तुम्हें मिलेगी। पढ़ते हुए हम लेखक के बारे में भी कितना जानते चलते हैं। वह किन चीज़ों के बारे में हमें बताना चाहता है। उन चीज़ों के कौन-से पहलू बताना चाहता है। वह हमसे किस भाषा में बात करता है...आदि। ये लेख और चित्र मशहूर बाल पत्रिका चकमक के लिए दिलीप जी ने सम्पादकीय टीम के साथ मिलकर बुने थे। वह मिलजुल भी इन लेखों में दिखेगी। दिलीप जी के चित्रों और लेखों को पिरोकर बनाई गई किताब जल्दी ही इकतारा से आने वाली है। किताब का नाम है - मिट्टी का इत्र।

मिट्टी का इत्र... दीमकों का तमाशा

लेख व चित्रः दिलीप चिंचालकर

खिड़की बगीचे में खुलती ज़रूर है मगर वह दक्षिण पूर्व दिशा है। रात को उधर से हवा कम ही आती है। हवा छत पर अच्छी आती है। पूर्व से... पुरवाई। उत्तर के आकाश में ध्रुव तारे के इर्द-गिर्द घूमता सप्तर्षि नक्षत्र और पश्चिम में रात भर हवा से बतियाते पीपल के पत्ते। गर्मियों में छत पर ठण्डी सफेद चादरों पर सोने का अपना मज़ा है। इसका अन्त एक रात बेरहमी से बेदखल कर दिए जाने से होता... अरे-अरे! आधी रात के बाद अचानक धूल-भरी आँधी का चलना, आकाश का घुप्प हो जाना और पानी की बौछार से बचते हुए गद्दे-तकिए लेकर वापिस बगीचे की खिड़की में आकर सोना। यह हर जून महीने के पहले पखवाड़े की लगभग तय घटना है। बारिश पहली बार रात में ही आना क्यों पसन्द करती है?

बारिश से उतनी शिकायत नहीं जितनी कोयल से है। पेड़ों के घने पत्तों में छुपकर शरारती बच्चों से उसका मुँह लगना फिर भी अच्छा लगता है। रात-बेरात बेवजह टंटा खड़ा करना उसे शोभा नहीं देता। मोहल्ले के पेड़ों पर हर साल ऐसी दो-तीन कोयलें आ धमकती हैं। रातभर चख-चख करना उनका स्वभाव है। गोया कोयल नाकाफी थी कि एक पपीहा भी मण्डली में आ जुड़ा। जैसे वसन्त में कोयल का आना भला लगा था वैसे ही जेठ की गर्मी में पपीहे का आना भी। यूँ तो पपीहे का नाम उसके 'पी कहाँ... पी कहाँ' बोलने से पड़ा है मगर मराठी में उसके बोल में 'पाऊस आला... पाऊस आला' (वर्षा आई...) सुनाई देता है। इसलिए गर्मी के दिनों में पपीहे का बोलना

थोड़ी राहत देता है। फिर जल्दी ही समझ में आ जाता है कि न पाऊस आया, न वर्षा आई। शोर ज़रूर बढ़ गया है। क्योंकि यह पंछी रात-बेरात बोलने लगता है। पहले धीरे फिर ज़ोर-से और तेज़ी-से। लगता है जैसे दिमागी बुखार से छटपटाता कोई मरीज़ चिल्ला रहा है। जिस भी अँग्रेज़ ने पपीहे को 'ब्रेन फीवर बर्ड' का नाम दिया वह इसके चीखने से काफी परेशान रहा होगा।

ऐसे में श्यामा को देख मन उससे दोस्ती करने को होने लगता है। यह काली-सफेद चिड़िया चुपचाप अपने काम में लगी रहती है। बगीचे में दो जोड़े हैं मगर उनका पता ही नहीं चलता। जब बारिश आ गई तब सबसे ज़्यादा खुशी उन्हें ही हुई। अपना सारा काम छोड़कर वे पूरी शाम टहनियों पर फुदकती वर्षा के स्वागत गीत गाती रहीं। केवल उस दिन ही नहीं, वे हमेशा ऐसा करती पाई जाती हैं। लगता है बारिश की सबसे ज़्यादा खुशी श्यामा और बुलबुल को होती है।

कैसी मज़ेदार बात है कि गन्ध का सौंधापन (जो भूने जाने के साथ जुड़ा है, जैसे गर्म मूँगफली की सौंधी महक या ऊनी कोट का सौंधा स्पर्श) बारिश में गीला होने के बाद निकलता है जब कई हफ्तों तक सिंकी मिट्टी पर वर्षा का पानी गिरता है। वह सौंधी खुशबू मौसम से पनपी सारी परेशानियों पर मरहम लगाने का काम करती है। इस सुगन्ध पर हम इसी समय ध्यान देते हैं। इसके बारे में न पहले विचार करते हैं, न बाद में। क्या ऐसा इत्र बनाया जा सकता है जिसकी खुशबू तपी मिट्टी पर गिरे पानी जैसी हो! यह खुशबू बारिश की बहुत खास दस्तक है, जैसा उसके स्वागत में होने वाला दीमक का तमाशा होता है।

किसी शाम अच्छी बारिश हो जाने के बाद गर्म ज़मीन से पंखों वाली दीमक बाहर निकलने लगती है। देखते ही देखते ढेरों कीड़े हवा में मण्डराने लगते हैं। ध्यान न रखो तो खिड़की-दरवाज़ों से घरों में घुस आते हैं। फिर उनके पंख टूट जाते हैं और वे फर्श पर रेंगने लगते हैं। उधर पक्षी शाम को घोंसलों में लौटना भूलकर देर तक इन जीवों की दावत उड़ाते रहते हैं। इसे दीमक का तमाशा कहना ठीक न होगा। यह उनका अपनी संख्या बढ़ाने का प्रसंग होता है। इसके तुरन्त बाद वे रेंगकर दरख्त-दराज़ों में अण्डे देते हैं। बगीचे के मेंढक भी इसी मौके पर बाहर निकलकर अपने मानसून मेले की शुरुआत करते हैं।

आँगन में पकी निम्बोलियाँ बिखरी हुई हैं। कुछ छोटे चींटे और छोटी चींटियाँ इनका मीठा गूदा इकट्ठा कर रही हैं। जगह-जगह मिट्टी की सिवइयों की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगी हुई हैं। यह केंचुओं का काम है। बारिश में मिट्टी नम हो जाने पर वे अब सतह तक आने लगे हैं। कई बार चींटों की टोली ऐसे किसी अभागे केंचुए को पकड़कर उसकी दुर्गत बना देते हैं। ये सब प्रकृति के नाटक के पात्र हैं। अगले दो-ढाई महीने चलने वाली बारिश में इनकी भूमिकाएँ प्रमुख रहेंगी।

संगीता गुंदेचा
चित्रः सौमित्र दासगुप्ता

यह बात तब की है, जब मैं छोटा था और मालवा के एक छोटे-से कस्बे में रहता था। पता नहीं क्यूँ उस समय को याद करने पर मुझे वहाँ सुबह-सुबह गोबर से घर लीपती हुई अपनी माँ दिखाई देती है। घोड़े की लीद और गाय के गोबर से लीपती हुई। अपने सधे हाथों से उखड़ी हुई ज़मीन पर लीपन के अर्द्धचन्द्राकार खींचती हुई। उस दृश्य के ठण्डे उजलेपन में मेरी आँखें न जाने क्यूँ हर बार ठहर-सी जाती हैं।

तब मेरी उम्र कोई आठ बरस की रही होगी। मैं माँ की अकेली सन्तान था। वे चाहती थीं कि उन्हें लड़की हो लेकिन जब मैं पैदा हुआ वे दुखी नहीं हुईं। उन्होंने मुझे लड़कियों की तरह कपड़े पहनाना शुरू कर दिया। वे बहुत समय तक मेरी लम्बी चोटी बाँधती रहीं। उन्होंने मेरे कानों में बालियाँ भी डाल रखी थीं। दो चमकीली सुनहली बालियाँ।

माँ में मुझे हमेशा से दूसरों के प्रति करुणा और सम्मान दिखाई देता था। सिर्फ मनुष्यों, जानवरों के लिए नहीं, प्रकृति मात्र के प्रति। वह पेड़-पौधों का भी बहुत सम्मान करती थी। जब कभी वह अपनी सखियों के साथ मन्दिर जाती और वे रास्ते में पड़ने वाली लताओं या वृक्षों से फूल तोड़ने लगतीं, माँ उनसे कहती, "इन्हें मत तोड़ो। इनमें जान है।" माँ की सखियाँ उस पर हँसने लगतीं। हमारे घर के आँगन में बीचोंबीच एक आँवले का पेड़ था।

मुझे अच्छी तरह याद है कि माँ मुरब्बा डालने के लिए अपने आप टूटकर गिरे या पक्षियों के गिराए फलों का इन्तज़ार करती। चिड़ियों या तोतों की चोंच लगे फलों में एक खास बात यह होती है कि वे जूठे होने पर भी जूठे लगते नहीं हैं। वे पक्षी मुझे अब ऐसे जान पड़ते हैं जैसे वे माँ के लिए शबरी का काम किया करते थे। बहरहाल, नौ बरस तक का होते-होते मुझे हरेक चीज़ में जान महसूस होने लगी। खासकर उन चीज़ों में जिन्हें बेकार समझकर हम कूड़ेघर में फेंक आते हैं। मसलन, मूँगफली के छिलके, टूटे पेन, कॉपियाँ, काँच की चटकी हुई शीशियाँ, सब्ज़ियों और फलों के छिलके और ऐसी कई चीज़ें जो माँ मुझे कूड़े में फेंक आने को कहती थीं। धीरे-धीरे मुझे लगने लगा कि माँ इन चीज़ों को बेवजह ही कूड़ेघर में फिंकवा देती है। इनमें जान है। इन्हें जब मैं कूड़ेघर में फेंक आता हूँ, ये वहाँ पड़ी-पड़ी सुबकती रहती होंगी और फिर अपने प्राण छोड़ देती होंगी। मेरी न जाने क्यूँ माँ से यह कहने की हिम्मत ही नहीं होती थी कि माँ हम कचरा बाहर कूड़े में क्यूँ फेंक आते हैं। उसे सहेजकर घर में क्यूँ नहीं रख लेते। कचरा जब मरता होगा, उसे कितनी तकलीफ होती होगी। कारण

शायद यह था कि कचरा फेंकना मुझे सभी घरों की आदत में शुमार दिखता था। मैंने माँ की तरफ से उत्तर भी खुद ही खोज लिया था कि वह कहेगी, "सब कचरा फेंकते हैं, इसलिए हम भी फेंक देते हैं।" माँ मुझे जब टट्टी करने के लिए भेजती, मैं बहुत देर से लौटता। यह सोचकर बैठा रहता कि टट्टी जब तक मेरे पेट में है, वह ज़िन्दा है। जैसे ही वह बाहर निकलकर गिरेगी और उस पर पानी गिरेगा वह मर जाएगी।

दीवाली आई। माँ ने घर की सफाई करनी शुरू की। घर के दोनों कमरे, पीछे का बरामदा और टट्टी-पेशाबघर चूने से पोते गए। वे चमचमाने लगे। माँ ने पूरा घर लीपा और चौखट पर गेरू और चूने से माँडने बनाए। फिर उसने पुराने और बेकाम के सामान की छँटाई शुरू की, जिसे वह फेंकने वाली थी। टूटी बाल्टियाँ और मग, दवाई और क्रीम खत्म हो जाने के बाद बची डिब्बियाँ, पुराने टाट, टुकड़ा-टुकड़ा बिजली के तार! सब एक-एक कर मेरी आँखों के
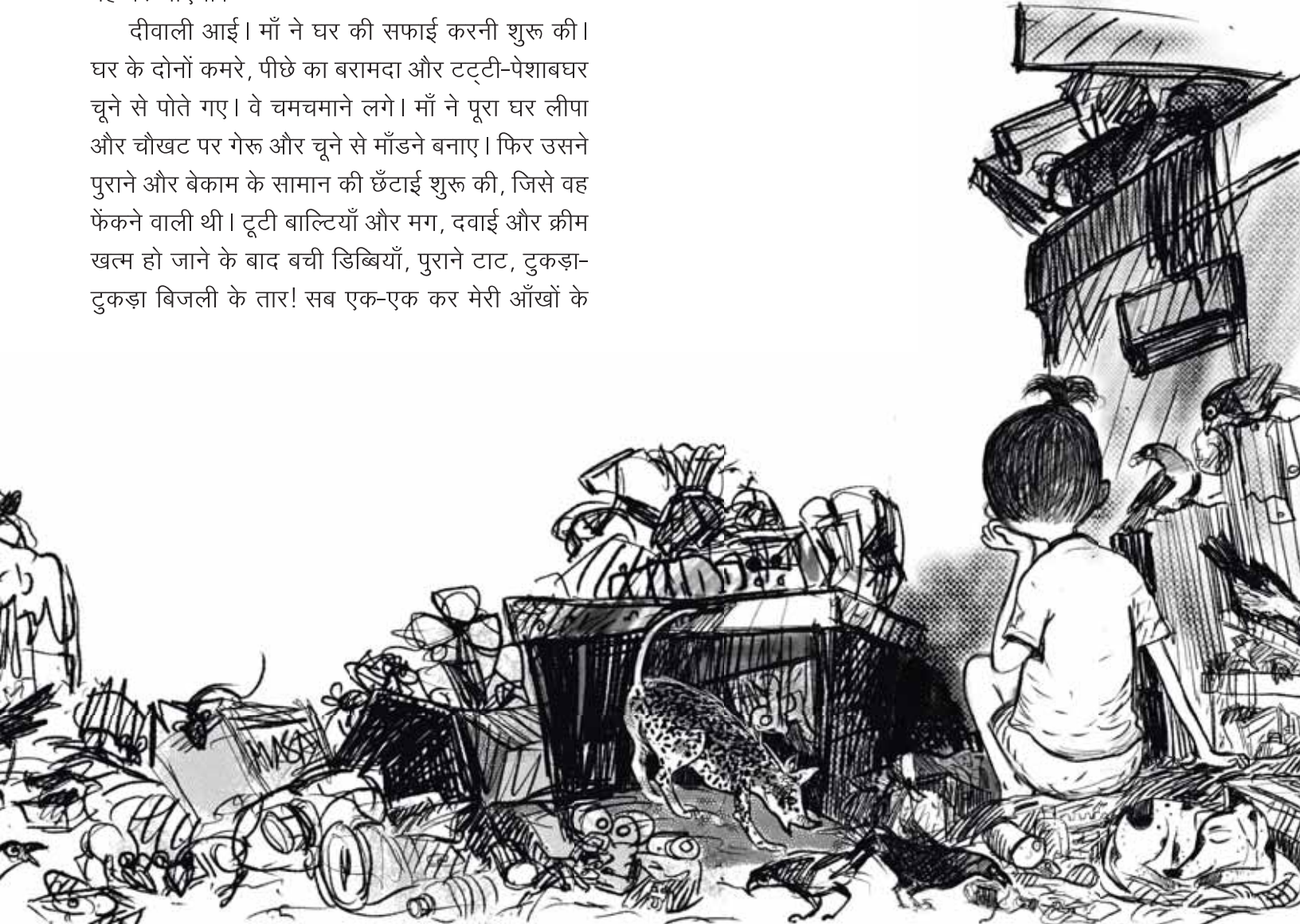
सामने से गुज़रते जा रहे थे। जब कोई चीज़ माँ फेंकने के ढेर में रख देती लेकिन फिर कुछ सोचते हुए उसे उठाकर अलग कर लेती तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहता। मैं माँ को सोच-सोचकर उन चीज़ों के उपयोग के बारे में बताने लगता जिनके बारे में वह विचार कर रही होती। दरार पड़े हुए कप और बस्सियों के बारे में मैंने माँ से कहा कि हम उनमें भीख माँगने वालों को कुछ खाने-पीने के लिए दे सकते हैं। वह तुरन्त मान गई। टूटे हुए मटके को गमले की तरह इस्तेमाल करने की सलाह भी मैंने ही माँ को दी। कई चीज़ों को बचाने के बावजूद फेंकने वाली चीज़ों का ढेर इतना बड़ा हो गया था कि उसे देखकर मेरी आँखों में आँसू ढलक आए। मैं घर से बाहर निकल आया।

फिर मैं घूमकर घर के पीछे की गली में बने कूड़ेघर तक गया। कुछ सोचते-सोचते पीछे के दरवाज़े से जैसे ही मैं घर के अन्दर आया, बरामदे के कोने में रखा लकड़ी का एक बड़ा-सा बक्सा मुझे दिखाई दिया। मेरा दिमाग चल पड़ा था। मैंने माँ से कहा कि वह थोड़ी देर आराम कर ले। सारा कचरा मैं ले जाकर कूड़ेघर में फेंक आऊँगा। माँ के थककर सो जाने के बाद मैंने धीरे-धीरे सारा सामान लकड़ी के बक्से में करीने से जमा दिया और अच्छी तरह से बक्से का दरवाज़ा बन्द कर दिया। यह करते हुए मुझे जो खुशी हुई, वह मैंने फिर और किसी काम में कभी महसूस नहीं की। यह करते हुए मैं मन ही मन एक सयाना आदमी बन गया था, जिसने कितनी ही जानें बचाईं थीं। उस दिन शाम का खाना नहीं बना था। माँ और मैंने फल खाकर काम चला लिया था। ज़ाहिर है केले और सेब के छिलके फेंकने मैं ही गया था।

पिछले दो दिनों से मैं सफाई के बहाने से स्कूल नहीं गया था। पर, अगले दिन सुबह बिना किसी खौफ के मैं स्कूल चला गया। माँ दिनभर में जमा घर का कचरा एक बाल्टी में रख देती और शाम को मुझे फेंकने के लिए भेजती थी। स्कूल से लौटने पर पहले मैंने करीब आधी भरी हुई बाल्टी देखी फिर बरामदे तक गया। कोने में नज़र डाली और लौट आया। दूसरे दिन, बस्ता कन्धे से उतारने के बाद मैंने बाल्टी में झाँका। वहाँ भिण्डी, बैंगन, प्याज़ के छिलके और धूल भरे कुछ कागज़ जमा थे। फिर मैं धीरे-धीरे बरामदे तक गया। लकड़ी के बक्से की ओर अपनी सरसरी नज़र कुछ इस तरह डाली कि वह वहीं रखा है पर कोना खाली था।

मैंने अपनी धुरी पर घूमकर पूरे बरामदे में देखा। बक्सा कहीं नहीं था। मैं दरवाज़ा खोलकर कूड़ेघर की ओर भागा। कूड़ेघर में मेरा बक्सा लुढ़का हुआ पड़ा था। उसका दरवाज़ा खुला था। उसके भीतर का सामान बड़ी बेतरतीबी से बाहर निकल आया था। मैं कूड़ेघर के भीतर कूद पड़ा। मैंने लुढ़के हुए लकड़ी के बक्से को सीधा करने की भरसक कोशिश की, लेकिन वह मुझसे हिला तक नहीं। मैंने अपने दोनों हाथों में बक्से को भर लिया और अपने गाल उससे टिकाए हुए बैठ गया। हवा का तेज़ झोंका आया और मेरे नथुनों में असहनीय दुर्गन्ध भरती चली गई। मैं कूड़ेघर से बाहर निकल आया। मैं समझ गया था कि लकड़ी का बक्सा और उसके भीतर की चीज़ें अभी-अभी दम तोड़ चुकी हैं।

दो-तीन दिन बाद मैं पहले की तरह ही बाल्टी उठाकर कूड़ेघर पर कचरा फेंकने के लिए जाने लगा। मुझे नहीं पता क्या लेकिन बक्से की घटना के बाद से मेरे भीतर कुछ टूटा ज़रूर था।

तीसरा दोस्त

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः अतनु राय

तालाब तालाब
तुम कहीं मत जाना
यहीं रहना
साफ पानी से भरे रहना
मैं तुम्हें नमन करने
तुम्हारे जल का स्पर्श
जैसे चरण-स्पर्श करता हूँ।
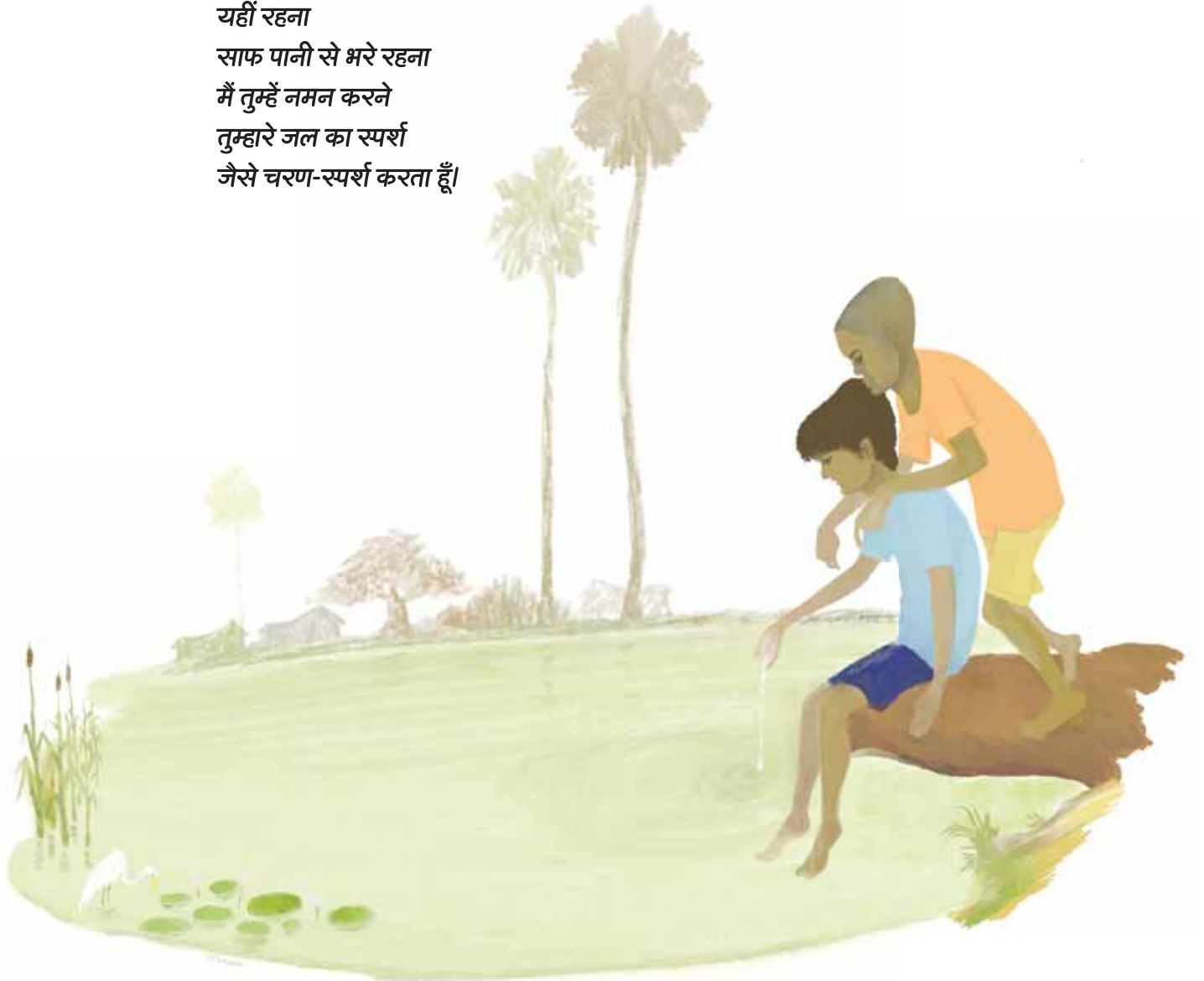
हम दोनों अच्छे दोस्त थे। दोस्ती में बचपन के दिन बिताते हुए बड़े हो रहे थे। मेरे घर से उसका घर थोड़ी दूर था। पर मुझे लगता है, उसके घर से मेरा घर और भी कम दूर था। शायद मैं उसके घर कम जाता होऊँगा, पर वह मेरे घर इसीलिए अधिक आता होगा। मैं अपने घर से उसके घर की दूरी को कम करने किसी दिन ज़्यादा चला जाता था। मैं उसका अधिक मित्र हूँ कभी मुझे लगता। हो सकता है उसे भी ऐसा लगता हो। कोई किसी से कम मित्र नहीं था। पर मित्रता तौलकर थोड़ी देखी जाती है! अगर देखी भी जाती, तो बराबर की होती। मैं जब उसके घर जाने की सोचता तो वह मेरे घर आ जाता। तब भी मैं कहता चलो हम दोनों तुम्हारे घर में खेलेंगे। और, ऐसा भी होता हम दोनों एक दूसरे के घर जाने के लिए निकलते और बीच रास्ते पर मिल जाते। कभी वह मेरे घर के पास मिल जाता। कभी मैं उसके घर के अधिक पास मिल जाता। पंख नहीं हैं। पैदल जाते हैं। इसलिए हमारे रास्ते, पगडंडियाँ रहतीं। पर यह भी सोचते कि उड़कर एक दूसरे के घर चले जाएँ।

हम रोज़ निकट हो रहे थे। घर निकट होने से घर के लोग भी निकट हो रहे थे। निकट आने से इकट्ठे होते हैं। इकट्ठे होने से निकटता का विस्तार होता है। पहले लगता था, हम दो होकर सम्पूर्ण हैं। तीसरा भी हो सकता है, ऐसा ख्याल नहीं आता था। मित्रता का जो दायरा बढ़ता था, वह हम दोनों के बीच बढ़ता था। मित्रता में हम दोनों एक दूसरे को जान रहे थे।

घर में जब बिजली चली जाती तो मैं डर जाता था। टॉर्च नहीं मिल रहा है। घर में मोमबत्ती एक जगह कोने में माचिस के साथ रखी रहती थी। ऐसी स्थिति में मैं अँधेरे में जहाँ हूँ वहीं खड़ा रहता। एक कदम आगे भी नहीं बढ़ाता था। घर के अन्दर का नक्शा दिन और रात के उजाले में इतना जाना-पहचाना होने के बाद भी अँधेरे में मैं दो कदम बिना टकराए नहीं रख पाता था। हाथ बढ़ाकर टटोलकर टकराने से बचने का कभी अभ्यास नहीं किया। पर मेरा दोस्त हमारे घर में इतना रम गया था कि मोमबत्ती और माचिस ढूँढकर उजाला कर देता था।

वह मुझसे सालभर बड़ा था। पर हमारी ऊँचाई एक थी। हमारी एक ऊँचाई का चिह्न मेरे घर की दीवाल में है। और उसके घर की दीवाल में भी। हम दोनों ऊँचाई नापते कि पहले से बड़े हो रहे हैं कि नहीं। वह जानता है कि मैं पेड़ पर चढ़ सकता हूँ। पर मुझे किसी से लड़ना नहीं आया। लड़ने का काम मेरे लिए वह करता था। हम दोनों रबर की चप्पल पहनते थे। जिस दिन मेरी नई चप्पल होती वह मेरी चप्पल पहन लेता। और, मैं उसकी पुरानी चप्पल। फिर हम दोनों एक पैर में नई चप्पल और दूसरे में पुरानी चप्पल पहन लेते थे। मैं उसकी नई कमीज़ देखता तो पूछता, "नई है।" तो वह कमीज़ उतारकर मुझे पहनने दे देता। मेरी पुरानी कमीज़ वह पहन लेता। और, यह बात दोनों घरों में इतनी नज़रअन्दाज़ होती कि उनको यही लगता कि हम अपनी कमीज़ ही पहने हैं। यह क्यों होता, मालूम नहीं। मैं उसका पहना होता वह मेरा ही दिखता। उसका पहना हुआ उसी का दिखता। उसकी टूटी पुरानी चप्पलें मेरे यहाँ पड़ी होतीं। मेरी उसके यहाँ।

मेरी पहनी उसकी साफ कमीज़ गन्दी हो जाती तो उसकी माँ कहतीं, "गन्दी हो गई है उतार दो। दूसरी पहन लो।"

कभी मैं उसकी तरह व्यवहार करता और वह मेरी तरह।

एक दिन उसकी माँ मेरे घर आई। बात करते-करते कहने लगी, "मुझे आपका बेटा मेरे बेटे की तरह लगने लगा है।"

मेरी माँ ने कहा, "मुझे भी आपका बेटा मेरा बेटा लगता है।" यह एक जैसा लगने का दोहराव था। तीसरा भी क्या हमें एक समझेगा। जो दो घरों में अलग-अलग रहते हैं यह समझ वैसी ही होगी जैसे बिना चश्मे के देखने में एक बल्ब दो बल्ब दिखता है। चश्मा लगाने पर एक बल्ब एक ही

दिखता है। चश्मा उतारना और पहनना दो अलग-अलग बातें हैं। पर व्यवहार में एक जैसे दिखने में आँखों में दोष नहीं वे निर्दोष होती हैं। प्यार का रंग और स्वाद एक होता है। उसमें ऊँच-नीच नहीं होता।

कुछ दिनों से मैं देख रहा था कि वो मेरे साथ नहीं है। अपने घर में उसका इन्तज़ार करते-करते उसके घर जाकर उसका इन्तज़ार करता। उसके घरवालों से पूछता नहीं था।

मुझे देखते ही वे बता देते थे, अभी-अभी तो था। आ जाएगा। कह कर सब काम पर लगे रहते।

अब वे मुझे अकेले इधर-उधर घर में देखकर पूछते नहीं थे। वे न पूछें तो अच्छा था। क्योंकि वे यही पूछते, "क्या झगड़ा हो गया है?" और, हँसने लगते। हम हर समय साथ होते थे। हमारे साथ होने में वही गैरहाज़िर होने लगा था। क्या कहीं तीसरा दोस्त भी है? मुझे उसे ढूँढना था। आखिर वह कहाँ जाता है। उसका कोई तीसरा दोस्त भी होगा ऐसा सोच भी नहीं पाता था। पुरानी दोस्ती, पुरानी कमीज़ की तरह होती होगी। नई चीज़ जब अच्छी लगती है तो नई दोस्ती भी। मैं दुखी हूँ कभी लगता, कभी लगता गुस्सा हूँ।

जहाँ-जहाँ मैंने उसे ढूँढा वह नहीं मिला। वह गायब था। और, उसके लिए मैं। इस तरह हम कई दिनों तक नहीं मिले। किसी को बताकर वह जाता नहीं था कि कहाँ जा रहा है। आज उसकी चप्पल टूट गई थी। उसकी माँ ने कहा कि पुरानी चप्पल पहनकर गया है। तुम्हारे घर गया होगा!

उसकी चप्पल का पट्टा टूट गया था। चप्पल ले जाकर मैंने बदलवा लिया था। उसी की चप्पल पहनकर मैं उसे ढूँढने निकला। मैं अपने मन से और चप्पल के मन से चल रहा था कि चप्पल मुझे वहाँ तक पहुँचा देगी जहाँ वह जाता है। और चप्पल ने मुझे वहाँ तक पहुँचा दिया। वह एक पत्थर पर बैठे तालाब के साथ खेल रहा था। वह पानी को चुल्लू में लेकर हाथों से बूँदों का पानी में टपकना देख रहा था। उसकी नई दोस्ती तालाब से थी। पत्थर पर थोड़ा खिसककर उसने मेरे लिए थोड़ी जगह बनाई। मैं उसके पास बैठ गया। मैं भी तालाब के साथ खेलने लगा।

तालाब पानी का घर
पानी की नींव
पानी के कबेलू, छप्पर
पानी की दीवार
पानी के बूँदों की
मणि रत्न वाली
गुँथी, नथनी पहने
एक मछली रानी को
चलो! तैरते देखने!

बिलकुल पत्थर की तरह गिरा

पीयूष सेकसरिया
चित्रः भार्गव कुलकर्णी
अनुवादः निधि गौड़

मैं शायद चौथी में था। वो बेहद गरम और धूल भरी दोपहर थी। हम मैदान में खेल रहे थे। वहाँ ऊँची घास और झाड़ियाँ थीं। आधी छुट्टी खत्म होने की घण्टी बजी। लेकिन मैं हिला नहीं। मेरी आँख आसमान पर टिकी थी। वहाँ एक पक्षी था। एक जगह पर रुका हुआ। मेरे साथी भागते हुए वापस जा रहे थे। मैं उस पक्षी से नज़रें हटा नहीं पा रहा था। अचानक वो एक पत्थर की तरह नीचे आता लगा। एक सेकेण्ड से भी कम वक्फे में वो ज़मीन पर आ गिरा। मैं हैरान था। उसे चोट लगी होगी। शायद मर गया होगा। मैं उसकी तरफ दौड़ा। मेरे करीब पहुँचते ही वो थोड़ा लड़खड़ाया और झटके से उड़ गया। मैं हैरान था। मैदान में मैं अकेला बचा था। पता नहीं कितना समय बीत चुका था। मैं क्लास की तरफ भागा। लेकिन उसकी याद मेरे साथ रह गई।

कई साल बाद मुझे एक बार फिर यही करतब दिखा। अब तक मैं दूरबीन से चिड़ियों को देखने लगा था। किताबों से उनके बारे में जानने लगा था। पता चला कि यह कापसी (Black-Winged Kite) है। लाल आँखों, सफेद-स्लेटी पंखों वाला आकर्षक पक्षी। जब वह कँधों पर अपने पंख समेटकर बैठता है तो उसके कँधे काले दिखने लगते हैं। पंखों के निचले किनारे भी काले होते हैं। इसके लम्बे पंख बैठने पर इसकी पूँछ को भी ढँक देते हैं। वैसे यह कौए बराबर शिकार पक्षी है।

कुछ पक्षी ज़मीन से थोड़ा ऊपर बिना हरकत किए हवा में मँडराते रहते हैं। हवा की गति से गति मिला कर उड़ते हैं। असल में वो अपने शिकार या खाने की तलाश में होते हैं। ज़रूरत पड़े तो ज़ोर-से पंख फड़फड़ा कर अपनी पूँछ से ये अपनी दिशा को पकड़ कर आसमान में एक जगह पर ठहरे रहते हैं। कापसी इन्हीं में से एक है। अपनी ऊँचाई कम कर या हर कदम पर मँडराकर ये दूरी तय कर लेते हैं और अपनी जगह बदलते रहते हैं। फिर अपने लिए सबसे बढ़िया जगह ढूँढ लेते हैं। अपने शिकार के एकदम ऊपर आकर बिलकुल पत्थर की तरह गिरते हैं जैसे ज़मीन छू लेंगे। असल में ये सीधे ज़मीन तक जाते हैं और बस आखिरी सेकेण्ड में ये अपने शिकार को पकड़ कर ऊपर आ जाते हैं। शिकार को अन्दाज़ भी नहीं होता। अकसर उनको अपने शिकार को बीच में ही छोड़ना पड़ता है। शायद सौ में एक बार ये कामयाब होते हैं। किस्मत से मुझे बचपन में इनके शिकार के आखिरी कदम को देखने का मौका मिला था। जो उसने जाने कितने सालों में सीखा होगा।

खेरमुतिया या छोटा बाज़ भी इस तरह करता है लेकिन उसका गोता कापसी की तरह सुन्दर नहीं होता। एक कलाबाज़ गुंजन पक्षी भी है। यह मध्य अमरीका में पाया जाता है और बहुत-ही छोटा होता है। फूल से रस लेते हुए ये उस पर मँडराता है।

कापसी हमारे यहाँ बहुत आसानी से मिलने वाला पक्षी है। शहरों के छोर पर मिल जाता है। ज़्यादातर तारों पर या

बिजली के खम्बों पर बैठा दिखता है। यह इतनी आसानी से दिख जाता है शायद इसीलिए हम इस पर ध्यान नहीं देते हैं। यह चूहे, गिलहरी जैसे कुतरने वाले जानवरों को खाता है। लेफ्टिनेंट बलजीत सिंह ने 1984 में 'न्यूज़ लेटर फॉर बर्ड वॉचर्स' में इनका मज़ेदार ब्यौरा दिया है। अभी बन रहे फौजी इलाके में उन्होंने बबूल के पेड़ों पर इन चिड़ियों को देखा था। इन चिड़ियों के यहाँ रहने के कारण को समझते हुए उन्हें थार के रेगिस्तान में मिलने वाले चूहों की आबादी दिखाई दी। कापसी इन्हीं को खा रहा था। यह पक्षी दिन में इनका शिकार करता था। एक बार बहुत भारी बारिश और बाढ़ के बाद इन चूहों को अपने बिल खाली कर कहीं और जाना पड़ा। उनके जाते ही कापसी भी नहीं दिखा।

मराठी में कापशी का मतलब होता है रुई जैसा। संस्कृत में कुमुद या सफेद कमल जो रात में खिलता है। किरन पुरन्दरे ने महाराष्ट्र की चिड़ियों पर कई किताबें लिखी हैं। उनकी एक किताब इसी चिड़िया पर है - 'कापशीची गोष्ठी'।

अगर कोई पक्षी आसमान से गिरता दिखे तो ध्यान देना वो कापसी हो सकता है।

नदी हमारी

मंगलेश डबराल
चित्रः संजू जैन

नदी हमारी छोटी-सी बच्ची-सी है
इसी गाँव की नन्ही बेटी जैसी है

अपनी दोनों मुट्ठी पानी से भर कर
दौड़ी जाती है वह दूर सफर पर

खेत सींचती देती है प्यासे को पानी
उससे मिलती जीवन को नई रवानी

किसी बड़े से पत्थर से जब टकराती
खूब उछलती, इठलाती, खुश हो जाती

बच्चों-बूढ़ों के सपनों में अक्सर आए
अपनी कलकल-छलछल से सुबह जगाए

नदी गाँव की छोटी, भोली, बच्ची-सी
ठण्डे-मीठे पानी के हरे-भरे घर जैसी

मंगलेश डबराल हिन्दी के चहेते कवि हैं। उन्होंने यह कविता खासतौर पर साइकिल के लिए लिखी थी। तुम्हारे स्कूल की लाइब्रेरी में उनका कोई न कोई कविता संग्रह तो होगा ही। जब मौका मिले पढ़ना। पेज पलटोगे तो तुम्हें मंगलेश जी की कविताओं की कुछ पंक्तियों का एक गुच्छा मिलेगा।

दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर

धूप उसके पास आए बिना निकल जाती है
उसके स्वाद बिना हो जाता है खाना खत्म

पेड़ करोड़ों चिड़ियों की नींद से बने हैं . . .

पैदल बच्चे
बारिश में भी पहुँच जाते हैं स्कूल
यह देखने कि वह बन्द है या खुला हुआ

तभी आएगा एक नाराज़ आदमी
हद हो गई अब नहीं होता बर्दाश्त

नए गुलाम इतने मज़े में दिखते हैं
कि उन्हें किसी के दुख के बारे में बताना
कठिन लगता है

आग मनुष्य की सबसे पुरानी अच्छाई है

इन दिनों हर कोई जल्दी में है

एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है
मसलन यह कि हम इंसान हैं

चित्र : भार्गव कुलकर्णी

भूख से परेशान लोग
अक्सर नींद से काम चलाते हैं।

घर में माँ की कोई तसवीर नहीं

नींद की अहमियत इस बात से ज़ाहिर है
कि उसके बिना हम अपने को जागा हुआ
नहीं कह सकते।

यहाँ आते जाते मैंने
भूख के बारे में सोचा
जो दिन में तीन बार लगती थी

अकाल में बटोरे गए दानों जैसे शब्द

चीज़ें खो जाती हैं लेकिन जगहें बनी रहती हैं।

1 मोर चिड़िया है पर अण्डे नहीं देता है। फिर उसके बच्चे कैसे होते हैं?

2 आधे सेब जैसा क्या लगता है?

3 नल के पानी से बर्फ जमाओ। थोड़ी बर्फ उबले हुए पानी से जमाओ। क्या दोनों के रंग एक-से हैं?
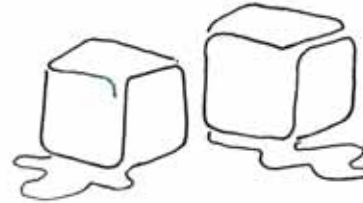
4 ( ) + ( ) + ( ) + ( ) + ( ) = 30

इनमें 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 और 15 संख्याओं को ऐसे लगाओ कि जवाब 30 आए। किसी संख्या को एक से ज़्यादा बार इस्तेमाल किया जा सकता है।

5 एक दुकानदार के पास चालीस किलो नाप का एक पत्थर था। एक बार वज़न लेते वक्त वह गिर गया। गिरा तो चार टुकड़ों में टूट गया। दुकानदार ने उन टुकड़ों का अलग-अलग वज़न करवाया। और उन पर उतनी तौल की चिप्पी लगा दी। दुकानदार को पता चला कि इन टुकड़ों से वह एक से चालीस किलो तक की कोई भी चीज़ तौल सकता था। इन चार टुकड़ों का अलग-अलग वज़न कितना होगा?
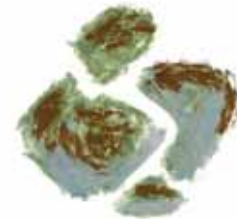
6 कुल चौबीस लोग थे। छह कतारों में खड़े थे। हर कतार में पाँच लोग थे। क्या ऐसा हो सकता है?

7 एक शीशी में शहद है। उसका वज़न आधा किलो है। इसी शीशी में अगर पानी भरा होता तो उसका वज़न 300 ग्राम होता। अगर शहद पानी से दो गुना वज़नी हो तो

8 राशिद ने एक बैट और बॉल 110 रुपए में खरीदी। अगर बैट बॉल से 100 रुपए महँगा है तो बॉल की कीमत कितनी होगी?

1. मोरनी अण्डे देती है, 2. आधे सेब का बचा हुआ आधा हिस्सा

4. (15-9) + (13-7) + (7-1) + (9-1) + (13-9) = 6 + 6 + 6 + 8 + 4 = 30

कठपुतली

भवानी प्रसाद मिश्र

गुस्से से उबली
बोली - ये धागे
क्यों हैं मेरे पीछे आगे?
इन्हें तोड़ दो;
मुझे मेरे पाँवों पर छोड़ दो।

सुनकर बोलीं और-और
कठपुतलियाँ
कि हाँ,
बहुत दिन हुए
हमें अपने मन के छन्द छुए।

मगर...
पहली कठपुतली सोचने लगी -
ये कैसी इच्छा
मेरे मन में जगी?

कठपुतली का सपना

कृष्ण कुमार
चित्रः कविता सिंह काले

कविताएँ इतनी अधिक मात्रा में लिखी जाती हैं कि उन पर कुछ देर ठहरकर सोचने के अवसर बहुत कम मिल पाते हैं। ज़्यादातर लोगों के जीवन में ऐसे मौके स्कूल की पढ़ाई पूरी हो जाने के बाद फिर कभी नहीं आते। पर स्कूल में कविता पर विचार की जगह पहले से तैयार विचार को दोहरा देने का चलन है। अकसर ऐसा विचार समाज में फैली मान्यता से चिपका होता है। कविता भले उस मान्यता पर चोट कर रही हो, मगर स्कूल में चोट को उभारने की जगह उसे सह लेना या भुला देना सिखाया जाता है।

कविता के पास किसी मान्यता पर चोट का औज़ार प्रायः कोई रूपक होता है। कठपुतली का रूपक कौन नहीं समझता? जो खुद कुछ न कर सके, जिसकी डोर किसी और के हाथ में हो, उसे कठपुतली कहा जाता है। भवानी प्रसाद मिश्र की यह कविता कठपुतली के मन में उठे गुस्से पर है। कविता की शुरुआत एकाएक गुस्से के उबाल से होती है। इतना पूछने का समय भी नहीं है कि कठपुतली को गुस्सा क्यों आया।

देखते ही देखते यह छोटी-सी कविता कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है। अन्य कठपुतलियों की टिप्पणी, फिर गुस्से से उबलने वाली पहली कठपुतली के मन में जगी शंका, और बस, कविता खत्म। सारी पंक्तियों को दोबारा पढ़ लें या बोलकर सुना दें तो लगेगा, हम किसी के मन की गहराई में उतर रहे हैं। कोई स्थापित छन्द यहाँ नहीं है, पर 'मन के छन्द' का ज़िक्र है। तुक भी इधर-उधर बिखरी है- 'धागे आगे', 'हुए छुए', 'लगी जगी'। कठपुतलियाँ जिन्हें नाचने की आदत है, आपस में बात कर रही हैं। हम उनकी

आपसी बातें सुन रहे हैं जिसमें गुस्सा है, गुस्से पर सहमति है, शंका है, खुद पर आश्चर्य है।

क्या इस बातचीत में कोई अर्थ छिपा है? कुछ वर्ष पहले शिक्षकों के बीच इस प्रश्न पर चर्चा के दौरान मैं अवाक् रह गया। दो शिक्षक, जो इस कविता को सातवीं कक्षा में पढ़ा चुके थे, बोले कि अर्थ एकदम साफ हैं कि औरतों के लिए आज़ादी खतरनाक हो सकती है। बाकी शिक्षक इस विवेचना से सहमत थे। जब मैंने पूछा कि वे इस निष्कर्ष तक कैसे पहुँचे, तो सबका जवाब था कि कठपुतली इस कविता में स्त्री का प्रतीक है। अपने इस तर्क को लेकर वे एकदम आश्वस्त थे।

मुझे एक गाना याद आया जो 1957 की 'कठपुतली' शीर्षक फिल्म में लता मंगेशकर ने गाया था। अभिनय वैजयन्ती माला का था। गीत शैलेन्द्र ने लिखा था और संगीत शंकर जयकिशन ने दिया था। यानी सब बड़े और प्रसिद्ध कलाकार इस गाने में शामिल थे। गाने की पहली पंक्ति है -

'बोल री कठपुतली, डोरी कौन संग बाँधी'

जवाब अगली पंक्ति में हैं "पिया संग बाँधी... मैं नाचूँगी अपने पिया के लिए..." फिर पहले अन्तरे में ये पंक्तियाँ आती हैं -

'जहाँ जिधर साजन ले जाएँ संग चलूँ मैं छाया-सी,
वो हैं मेरे जादूगर मैं जादूगर की माया-सी'

अभिनय में वैजयन्ती माला एकदम कठपुतली की तरह हाथ गर्दन और धड़ हिलाती हैं। फिल्म के शीर्षक और इस गीत में इस्तेमाल किया गया कठपुतली का रूपक समाज और संस्कृति में पुराने समय से गहराई में जड़ा हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं कि शिक्षकों ने 'कठपुतली' शीर्षक देखते ही तय कर लिया कि यह कविता औरत के बारे में है।

शायद है भी, पर कविता का प्रस्थान-बिन्दु औरत का गुस्सा है। यदि ऐसा है तो भी अन्त में उठी शंका को किसी खतरे से जोड़ने में शिक्षकों ने कवि को छोड़कर अपनी सामाजिक मान्यता का सहारा लिया। कवि ने तो कठपुतली को उसके मन में जगी इच्छा पर विस्मित होते हुए कविता का समापन किया है। विस्मय में आश्चर्य और हलकी-सी खुशी का भाव रहता है।

भवानी प्रसाद मिश्र की बहुत-सी कविताओं में जमी हुई चीज़ों को आहिस्ते से छूने का भाव मिलता है। वे नम्र स्वभाव के कवि और व्यक्ति थे। हलके से स्पर्श से गहरा प्रश्न उठा देते थे। उनकी शायद सबसे प्रसिद्ध कविता फिल्मी किस्म के गीतों पर है, 'जी हाँ हुज़ूर मैं गीत बेचता हूँ।' उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं-

'यह गीत सख्त सरदर्द भुलाएगा,
यह गीत पिया को पास बुलाएगा।
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको,
जी लोगों ने तो बेच दिए ईमान,
जी आप न हों सुनकर ज़्यादा हैरान...'

किसी एक फूल का नाम लो

दिलीप चिंचालकर

अगर कोई मुझसे ऐसा करने के लिए कहे तो मैं बेहिचक कहूँगा नस्टुर्शियम। यह मेरा प्रिय फूल है। हिन्दी में इसका कोई नाम नहीं है। जलकुम्भी तो बिलकुल ही नहीं है। यह परदेसी पौधा है। जाड़े में यहाँ भी खिलता है। यूँ मेरी पसन्द जानकर यदि कोई मेरे स्वभाव के बारे में बताना चाह रहा होगा तो वह खुशनुमा ही होगा रंग-बिरंगा, कुछ चरपरा, स्वादिष्ट और उपयोगी।

नस्टुर्शियम को लेकर एक कहावत है कि इससे बुरा व्यवहार करो। कहावत का बाकी हिस्सा जो कहा नहीं जाता, केवल समझा जाता है, वह है फिर भी यह खूब खिलेगा। मनुष्य में ऐसा गुण तो महानता का लक्षण कहलाएगा। इतना भर ध्यान रहे कि नस्टुर्शियम का बीज जहाँ गिरेगा उगेगा और वहीं खिलेगा। अर्थात् मिट्टी अच्छी न हो तो भी चलेगा मगर दूसरे मौसमी फूलों की मानिन्द इसके पौधों को नर्सरी से उखड़कर दूसरी जगह लगना रास नहीं आता है।

मैंने इसे पहली बार देखा तब मैं नवीं कक्षा में पढ़ रहा था। नीरस विषयों से हटकर प्राणियों और पौधों के बारे में कुछ नया पढ़ाया जाने लगा था। तब पता चला था कि कुछ पौधों के पत्तों का आकार गोल होता है। लगा था दुनिया के किसी कोने में होते होंगे कोई अजूबा पौधे। मगर मैंने इसे ऐन शहर के चौक में गन्ने के रस की एक दुकान पर उगता हुआ पाया था। इसे देखा और मैं इसका कायल हो गया।

नस्टुर्शियम के पौधे जब किशोर हो लहलहाने लगें तब उन पर पानी छींटो। पत्ते पानी को झेलकर ओस की बूँदों की तरह अपने ऊपर जमा लेंगे। इन पत्तों को तोड़कर, कतरकर सलाद में मिलाओ। फूलों की केसरी-लाल-पीली पंखुड़ियों का डबलरोटी में सैंडविच बनाओ। जब फूलों से ताज़े बीज निकलें तो उनका अचार डालो। पत्तों के नीचे छुपी सफेद-हरे कोमल बीजों की तीन-तीन की टोलियाँ बड़ी निरीह लगती हैं। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता की एक पंक्ति कुछ ऐसी है – शब्द 'जाड़ों की छाँव' में आराम कर रहे हैं...। रह-रहकर लगता है कि उन्हें ऐसी उपमा का ख्याल नस्टुर्शियम के बीजों को देखकर ही आया होगा। क्योंकि उनके घर के सामने भी जाड़ों में नस्टुर्शियम के वन खिलते थे।

मैं चाहता हूँ कि मेरे पुराने घर की ओर आती पगडण्डी के किनारे भी नस्टुर्शियम के वन खिलें। और मैं कैनवास का टोप लगाए, बागड़ के पास कुर्सी लगाकर जाड़े की धूप सेंकता हुआ कुछ सोचूँ। कोई याद, कोई कहानी।

चित्रः ट्यूडर संट जॉर्ज टकर

जंगल में वारदात

लेख व चित्रः दिलीप चिंचालकर

गाँव वैसे ही सड़क से पौने दो मील अन्दर था। फिर ठाकुर साहब की गढ़ी गाँव के दूसरे छोर पर थी। बगल से बगड़ी नदी बहती थी। इतने पास से कि रात या दोपहर के सन्नाटे में उसकी कल-कल गढ़ी के बुर्ज पर सुनाई देती थी। दोपहर के खाली समय में पुस्तक पढ़ने के लिए बुर्ज सबसे अच्छी जगह थी। यूँ तो मैं पूरा दिन खाली ही रहता। शहर की चकाचौंध से दूर इस खेड़े में साल में दो बार मैं तारों भरा आसमान देखने के लिए यहाँ आता रहा हूँ।

सुबह का समय नदी और खलिहान पार कर खेत, पहाड़ी और झाड़ियाँ घूमने-घामने का होता। ठाकुर साहब की ज़मीन इतनी बड़ी थी कि यह सब उसी में था। फिर गाँव में सबसे राम-राम-श्याम-श्याम होने से किसी भी खेत में चना-मटर खाने पर रोक नहीं थी। चना-मटर तो बाद में आता। झाड़ियों में लगी बेरियाँ, करोंदे, बेर, बन्दर रोटी खाते-खाते मन ही न भरता। तरह-तरह के जंगली फूल, कीट-पंतगे, मधुमक्खियाँ देखते हुए सूरज सिर पर आ जाता। तब ठाकुर साहब का हरकारा छतरसिंह खाने का बुलौआ लेकर किसी पेड़ के पीछे से नमूदार होता।

पिछली रात हल्का-सा मावठा गिरा था, यानी जाड़े की बारिश। नींद नहीं आ रही थी इसलिए बुर्ज में बैठकर मैं किताब पढ़ रहा था। गढ़ी के वातावरण में शर्लाक होम्स का जासूसी उपन्यास पढ़ना मुझे बहुत पसन्द है। खास तौर पर उसकी 'हाउण्ड ऑफ बास्कर विल' वाली घटना। यह सन् 1742 की स्कॉटलैण्ड के दलदली मैदानों की घटना है। इन मैदानों को मूर कहते हैं। रात के अँधेरे में कहीं से एक दैत्याकार कुत्ता आ निकलता है जो भूले-भटके राहगीरों का शिकार करता है। वैसे भी सबूतों का विश्लेषण करने का होम्स का तरीका मुझे सुहाता है। कई बार सुबह छतरसिंह के साथ खेतों की तरफ निकल जाने का मौका मिल जाता। तब मैं चौड़ी पाती का हैट पहनकर कल्पना करता जैसे मैं खुद शर्लाक होम्स हूँ। झाड़ियों की पत्तियाँ और मरी हुई तितलियाँ इस अन्दाज़ से किताब के पन्नों के बीच रखता जाता गोया वे मौका-ए-वारदात से बरामद महत्वपूर्ण सुराग हों।

करंज के पेड़ के नीचे मुझे तीन खूबसूरत काले-ताम्बई रंग के पंख मिले। मैंने उन्हें यूँ ही उठा लिया था। तीनों को पास-पास रखकर अच्छा कम्पोज़िशन बनता है इसलिए। यह देखकर छतरसिंह ने कहा, "शिकारी भी कभी-कभी शिकार बन जाता है।"

"मैं समझा नहीं।"

"ये पंख महोका के हैं। लगता है बिलाव उसे मारकर खा गया।"

महोका या कूकल जिसे अँग्रेज़ी में क्रो-फीजेंट कहते हैं, कौए से थोड़ा बड़े आकार का होता है। यह खेत के चूहे, छोटे जीव और चिड़ियों का शिकार कर खाता है।

"यह तुम्हें कैसे पता चला?"

"साब, इसलिए कि ये पंख झड़ने का मौसम नहीं है। लगता है किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती में टूटे हैं ये।"

बात तो ठीक थी। बसन्त में या गर्मियों में पक्षियों के पंख झरते हैं। जाड़े की शुरुआत में बिलकुल नहीं। टूटे हुए पंखों की नोक पर खून की लाली थी। झरे हुए पंखों-सा साफ-सुथरापन उनमें नहीं था।

अब मुझे इसमें रहस्य कथा की गंध आने लगी। छतरसिंह को उकसाया तो वह खुलासेवार बताने लगा।

महोका का ये जोड़ा पहले परली तरफ के महुए पर बैठता था। जोड़ा टूट गया तो यह नर यहाँ करंज पर बैठने लगा। डाल के ठीक नीचे गिरी बीट बता रही थी कि बीती रात भी वह यहीं बैठा था। डाली पर बैठकर सोने वाले पक्षी नींद में नीचे नहीं गिरते। डाली पर उनके पंजों की पकड़ तभी खुलती है जब वे पंख पसारते हैं।

"और जंगली बिलाव की बात?"

(पेज 63 पर जारी)
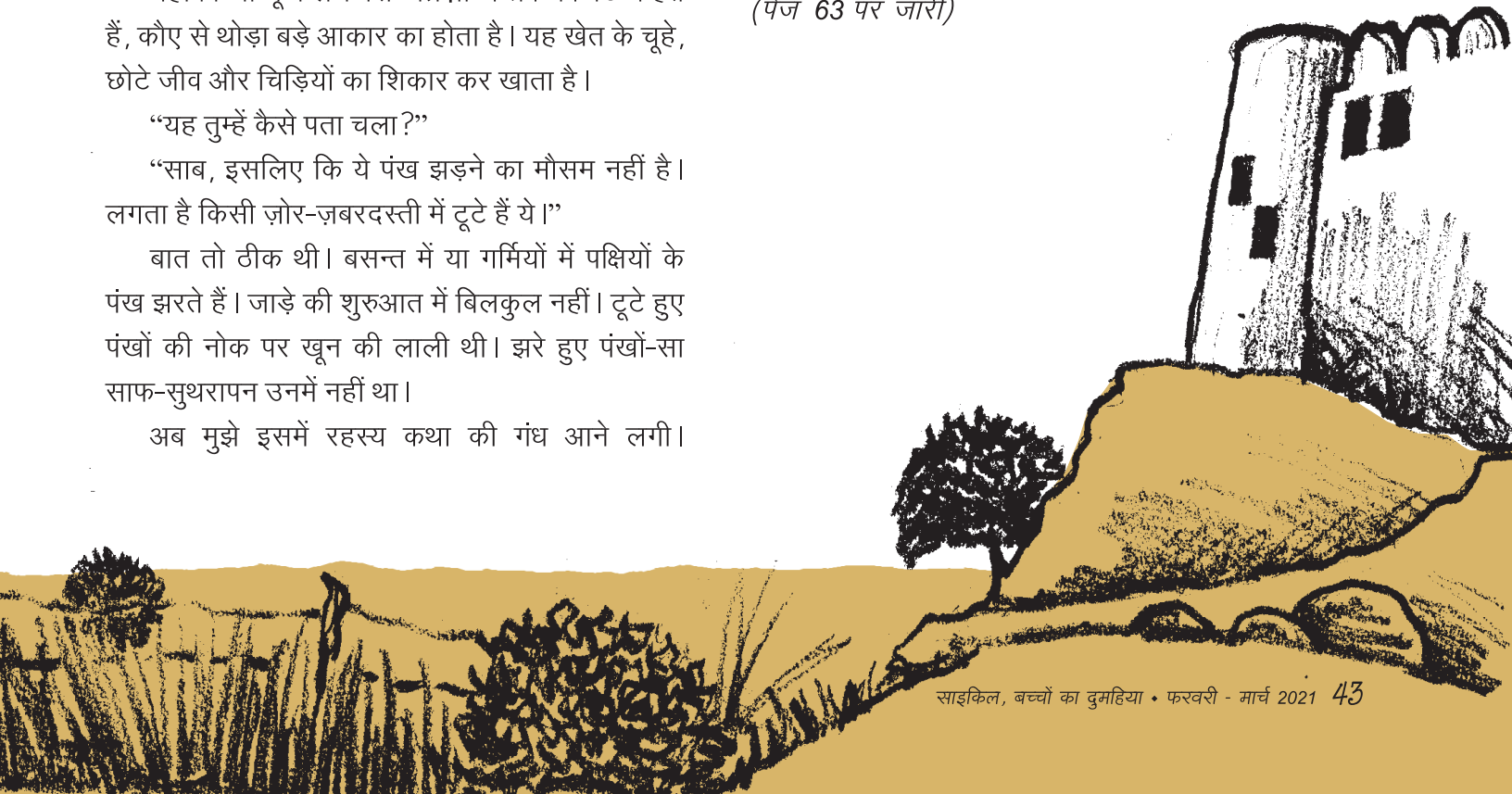
सोपान जोशी

चित्रः अतनु राय

वैसे तो रेत भुसभुसी होती है, उसके कण-कण बिखर जाते हैं। इतने हलके होते हैं कि हवा भी उन्हें उड़ा के आकाश में पहुँचा देती है। लेकिन रेत के बिना कुछ बन नहीं सकता, चाहे इमारतें हों या सड़क!

इमारत बनाने में गोंद का काम सीमेंट करती है और सड़क बनाने का गोंद होता है चिपचिपा डामर। दोनों को मज़बूत बनाने की ताकत पत्थर या रोड़ी से मिलती है। लेकिन गोंद और पत्थर की पकड़ दमदार नहीं होती। उसमें कई छेद होते हैं जिनमें हवा घुस जाती है।

इन छेदों को भरने का काम रेत करती है। रेत पत्थर के टुकड़ों को सीमेंट या डामर से बाँध के रखती है। यानी जो भुसभुसापन रेत के कण-कण को अलग कर देता है, उसी बिखरने की तबीयत की वजह से रेत पत्थर और गोंद के बीच के छेदों के भीतर घुस जाती है। उन्हें भर देती है।

मतलब यह कि हर नया भवन, हर नई सड़क बनाने के लिए रेत चाहिए। लेकिन रेत हर जगह नहीं मिलती है। चाहे एक-से दिखें पर रेत और मिट्टी एकदम अलग चीज़ें हैं। मिट्टी के कण एक-दूसरे से चिपक कर रहते हैं क्योंकि कई तरह की खाद उनमें गोंद की तरह काम करती है। तभी तो उनमें पानी रुक जाता है। तभी तो उसमें खेती होती है। मिट्टी के कण रेत की तरह बिखरते नहीं हैं।

रेत यानी पत्थरों और चट्टानों के टूटने से बने महीन कण। पहाड़ जब टूटते हैं तब उनमें से बड़ी-बड़ी चट्टानें निकलती हैं। जब वे टूटती हैं तब छोटी चट्टानें बनती हैं। उनके टूटने से पत्थर बनते हैं। जब छोटे पत्थर कण-कण में टूट जाते हैं तब रेत बनती है।

पर इतनी सारी रेत आखिर पहाड़ों से हम तक आती कैसे है? इसका जवाब आसान है। नदियाँ पहाड़ों से चट्टानों के कण अपने पानी के साथ बहा कर लाती हैं। यह रेत इतनी सारी होती है कि इससे बड़ी-बड़ी खाइयाँ भी पूर जाती हैं।

हमारे चारों तरफ अनगिनत इमारतें हैं। सड़कें भी यहाँ से वहाँ दौड़ रही हैं। इन सब के लिए ढेर सारी रेत नदियों के तल से निकाली जाती है। हमारे देश की सभी बड़ी नदियों से रेत का खनन होता है। हज़ारों-लाखों की संख्या में ट्रक नदियों से रेत निकालते जा रहे हैं।

कई जगह यह चोरी-छिपे होता है क्योंकि इतनी मात्रा में रेत निकालना अपराध है। इसे रोकने के लिए कानून बने हुए हैं। फिर भी रेत का व्यापार धड़ल्ले से चलता है। इसे बेचकर मुनाफा कमाया जा रहा है।

पर इतनी भारी मात्रा में रेत निकालने से नदियों का बहुत बड़ा नुकसान होता है। रेत नदी के पैर का काम करती है। तभी तो पहाड़ों से पानी के साथ बहती रेत मैदानों में आती है और फिर समुद्र में चली जाती है। जहाँ-जहाँ नदी वहाँ-वहाँ रेत। जब रेत को खोद के निकाल लिया जाए, तो नदी के पैर टूट जाते हैं। पानी का चलना रुक जाता है। नदी का पहाड़ और समुद्र से सम्बन्ध टूट जाता है। नदी में रहने वाले प्राणी मिटने लगते हैं।

इमारतें और सड़कें बनाने की हड़बड़ी में हम अँधाधुँध रेत का खनन करके अपनी नदियों को अपंग बना रहे हैं। क्या हमारी नदियाँ हमें माफ करेंगी?

शिराज़ हुसैन

चित्रः प्रोइति रॉय

इस बार नाना साहब ने पहले से बड़ा पत्थर उठाया और सामने वाली छत पर भौंक रहे कुत्ते को मारा। ये हवाई फायरिंग का नाटक कुत्ता एक हफ्ते से देख रहा था और अब इस नकली पत्थरबाज़ी से उसका डर निकल गया था।

वो दुबारा ध्यान लगाकर आज़ान के साथ-साथ भौंकने लगा। जब-जब आज़ान होती वो भौंकता। वो सुबह की फज़र और रात की इशा तो छोड़ता ही नहीं था। नानाजी इस कुत्ते के कुत्तेपन से एक हफ्ते से परेशान थे। कम्बख्त इसी टाइम भौंकता है गधा।

सफेद रंग का ये कोई पालतू कुत्ता नहीं था। बस सामने वाली इमारत की छत पर रहने वाला नौकर उसे कुछ-कुछ खाने को डालता रहता तो कुत्ता रोज़ ही छत पर आने लगा था। नाना साहिब भी इसी इमारत के सामने वाले घर की तीसरी मंज़िल पर रहते थे। वो मुहल्ले की मस्जिद के सबसे बुज़ुर्ग कर्ता धर्ता थे।

कई बार मुअज़्ज़न साहिब आज़ान देने के लिए सिर्फ माइक में गला खँखारते और सामने की छत पर कुत्ते के कान खड़े हो जाते। आज़ान होते ही आवाज़ से आवाज़ मिलाने की पूरी कोशिश होती।

सुबह फज़र में भी नाना साहिब जब इस पर मुँह-अँधेरे भाप के पत्थर फेंकते तो अपने मुँह से 'होशश हष भागगग' की आवाज़ें निकालते। कुत्ता पल-भर को चुप होता और फिर अपनी 'हू' में लग जाता।

नाना साहब इस घर में अकेले रहते थे। और अपने दादा का बना गठिया के दर्द का हकीमी नुस्खा बेचते थे। ये नुस्खे आसपास काफी मशहूर थे। और इसी आमदनी से उनका खर्च चल जाता। वैसे मुहल्ले वाले भी शादी-ब्याह त्यौहार वगैरा में उनका ख्याल रखते। अकसर छोटे बच्चे उल्टा भाग-भाग कर उनके सामने आ-आ सलाम करते और नाना साहिब अपने खास लम्बे 'वाअलैकुम अस्सलाम' के साथ चलते रहते।

आज आज़ान के वक्त जब वो भाग कर पत्थर फेंकने बालकनी में आए तो कुत्ता उन्हें देखकर चुप तो क्या ही होता उल्टा भौंकते-भौंकते पूँछ हिलाने लगा। नाना साहिब ने दाँत पीस कर उसे घूँसा दिखाया। तब भी उसकी ये बदतमीज़ी जारी रही। "अजीब बाओला कुत्ता है, गधा!" कहते वो वापिस कमरे में आ गए। क्योंकि आज़ान अभी बाकी थी तो वो फिर आज़ान में लग गया।

अब वो जब भी पत्थर फेंकते तो कुत्ता इन नकली पत्थरों से असली पत्थरों की तरह बचता, कूदता, उछलता और इस दौरान उसकी पूँछ लगातार हिलती रहती। फिर कभी रुक कर भौंकता। जैसे कहता हो, "और फेंको।"

नाना साहिब को कुत्ते की ये अठखेली अच्छी नहीं लगती। लगता जैसे वो उनका मज़ाक उड़ा रहा है। बल्कि दोपहर में जब वो मस्जिद के वज़ूखाने का फर्श मिस्त्री से ठीक करा रहे थे तो पास पड़े बजरी के ढेर से एक पतला-सा पत्थर उठाकर जेब में रखने का ख्याल

आया। मगर कुछ सोच कर ये इरादा मुल्तवी कर दिया। इसी रात इशा की नमाज़ को जाते हुए उन्हें लगा कि कोई दबे कदमों पीछे-पीछे है। पलटे तो सामने की छत का सफेद कुत्ता पूँछ हिला रहा था।

उसे करीब से देखकर वो थोड़ा डरे। "अरे अरेरेरे। यहाँ भी आ गया। भागग" उन्होंने हिम्मत करके ज़ोर से बोला। वो फिर पूँछ हिलाने लगा। "बड़ा गधा है भई।" कह कर नाना साहब जल्दी-जल्दी उससे बचते बचाते, घूँसा दिखाते मस्जिद पहुँच ही गए। मगर इस रात अचानक नाना साहिब की तबीयत ऐसी ढीली हुई कि बिना कुछ खाए पिए लेट गए और जाने कब सो गए।

ख्वाब कहीं बीच से शुरू हुआ था। जिसमें बारिश से पहले की घटाओं वाली रोशनी थी। नाना साहिब सामने वाली छत से अपने घर जैसा कुछ देख पा रहे थे। उनके और नीले आसमान के बीच सफेद-सफेद बादल उड़ते जा रहे थे कि तभी दूर से आज़ान की आवाज़ आने लगी। जैसे-जैसे वो आवाज़ करीब आई सब मंज़र धुँधला गया। उनकी आँख खुली तो सामने छत वाला कुत्ता बिना मस्जिद की आज़ान के खुद ही न जाने कब से रियाज़ में लगा था।

नाना साहिब ने अँधेरे में ही उसे गधा कहते हुए अपनी 30 साल पुरानी रेडियम वाली हाथ घड़ी देखी 'अरे वक्त तो बिलकुल सही, आज़ान का ही है।'

खैर, वो एक कप दूध पी घर से वुज़ू करके मस्जिद पहुँचे तो मस्जिद खाली से भी खाली पड़ी थी। पूछने पर मुअज़्ज़िन ने बताया नमाज़ी कैसे आते नाना साहिब, आज बस माइक ठीक किया ही था कि लाइट चली गई।

नाना साहिब कुछ नहीं बोले। ना मुअज़्ज़न को उनके आ जाने का ताज्जुब हुआ। यही लगा कि पुराने आदमी हैं आँख खुद ही खुल गई होगी। मगर उसी दिन ज़ुहर के वक्त अजीब किस्सा हुआ। वही कुत्ता भरी दोपहरी में नाना साहिब का पीछा करते-करते मस्जिद में आ पहुँचा। वह वुज़ूखाने के ताज़े फर्श पर दो कदम चला ही था कि हर तरफ से दुत्कार का शोर उठा। नाना साहिब ने खुद एक कदम उठा नकली पत्थर की मुट्ठी बना ज़ोर से "भ आ ग" बोला।
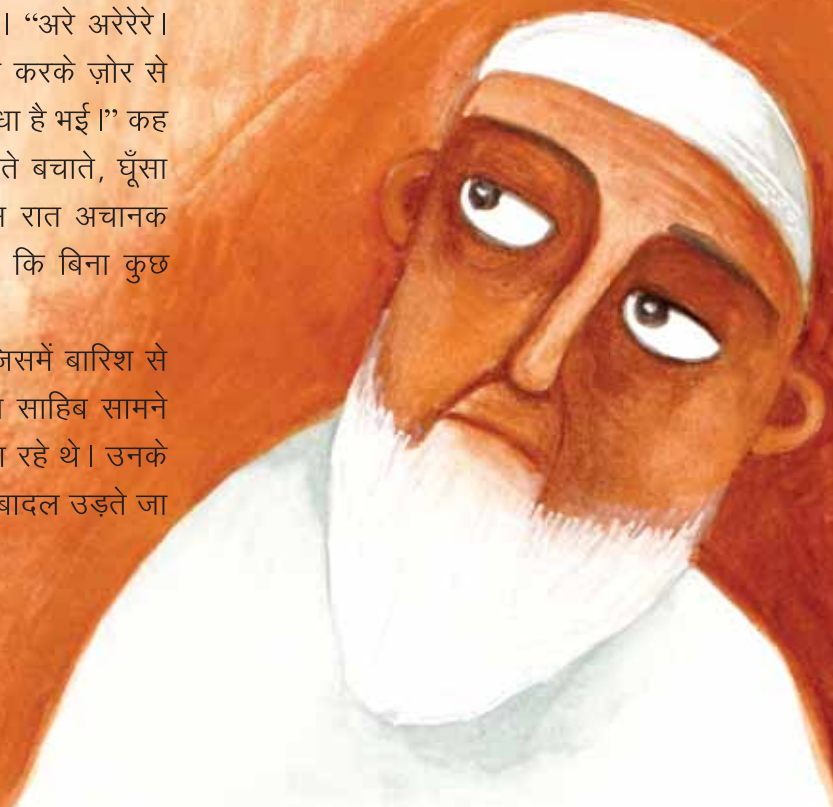
कुत्ता डर से उल्टे पाँव जा ही रहा था कि तभी एक बच्चे ने उस की सफेद पीठ पर खींच कर असली पत्थर दे मारा। कुत्ते की चीख मस्जिद में गूँज गई।

"ए लड़के।" बच्चा काँप गया। नाना साहिब की ऐसी गरज आज तक किसी ने नहीं सुनी थी। मस्जिद के सब लोग पलट कर उन्हें देखने लगे। एक पल को उन्हें खुद समझ नहीं आया कि क्या करें। फिर जल्दी से पास पड़ी फर्श बराबर करने वाली पट्टी से गीले सीमेण्ट में छपे निशान जल्दी-जल्दी बराबर करने लगे। सब लोग वापिस अपने काम में लग गए और बात आई-गई हो गई।

नाना साहिब ने घर वापिस आकर एक उचटती-सी निगाह सामने वाली छत पर डाली मगर वहाँ कोई नहीं था। ना असर में, ना मगरिब में और ना ही रात की इशा में। फिर सुबह भी फ़ज़र में आज़ान ही से आँख खुली। "कहाँ चला गया, अरे गया हो तो गया हो, मुझे क्या? शोर से सुकून तो हुआ।"

वो मस्जिद पहुँचे तो वुज़ूखाने का फर्श सूख चुका था। लाइन से लगे नलों में पहले नल की तरफ गए जहाँ से कुत्ता आया था। वो वुज़ू करने के लिए वहीं गोल पटरी खिसकाकर बैठ गए। फर्श पर गौर किया तो सब चिकना होने के बावजूद पंजे का मामूली-सा निशान वहाँ रह गया था। उन्होंने अपनी उँगलियों के पौरों से वो निशान छुआ ही था कि एक नौजवान ने मस्जिद के दरवाज़े से ही "नाना, अस्सलामु अलैकुम्म्म" कहा।

जवाब में 'वाअलैकुम अस्सलाम' कहते हुए नाना साहिब ने वो निशान अपने पैर से छिपा लिया और बढ़कर नल खोल दिया। पानी की तेज़ आवाज़ में शायद वो मुँह ही मुँह बड़बड़ाए "गधा कहीं का।"

नील, नवीं, सवाई माधोपुर, राजस्थान

चित्रः भार्गव कुलकर्णी

अमित दत्ता
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

पढ़ा था
अड़ा था,
यह सवाल मन में।
अरे!
मेरी दादी में इतनी अक्ल कैसे
जब वो कहे,
कि वो उगा लेगी
कद्दू
छत पे?

सवाल क्या है? कद्दू?
नहीं
सवाल से कद्दू का नहीं कोई लेना-देना।
वह कहती थी
जो दिखे उसका उपयोग केवल इतना
जो न दिखे उसका अहसास करवा दीना।

उसने सुना था अपनी दादी से,
उसकी दादी ने अपनी दादी से
– और ऐसे ही लम्बी खिंचती जाए लकीर।
उन दिनों हमारे गाँव के आम के पेड़ के नीचे
बैठता था एक फकीर
तो मैंने उससे पूछा
देखना क्या होता है बाबा?

जैसे कि होना!
अभी मैं हूँ
जब मैं नहीं था
तो क्या था?
कहाँ था? कब था?
और जब मैं नहीं रहूँगा
– कहाँ रहूँगा?
बाबा ऐसा बोला तो मेरा सिर चकराया
यही सवाल दादी से पुछ्वाया
वह हँसी, बोली
कोई तस्वीर देख लो, या फिर सुन लो कोई गीत।

क्या तस्वीर हमें जो उसमें है
उसे न बता कर,
कह रही है कुछ ऐसा
जो उसमें नहीं है?

यह कितनी जटिल बात हुई।

बिलकुल!
बोला फकीर
मेरी दादी भी यही कहती थी।
इस तरीके से चित्र या गीत जोड़ता है हमें
ब्रह्माण्ड के रहस्यों से
अन्तरिक्ष के कोने में बैठी हमारी इस नन्ही-
सी पृथ्वी
और इस पर हम हैं, अणु से भी छोटे
जैसे कि आकाशगंगा में बहते तिनके।
यह अनबूझी तस्वीरें, गीत व फिल्में।
विज्ञान की क्षमता से परे
सुलझाती हैं, टटोलती हैं
हमारे मन की अनगिनत परतें।

यानी?
अच्छा समझाता हूँ।
अभी यह चित्र दिखाता हूँ–
मेरी दादी की दादी की दादी की दादी के
समय का है–
देखो!
इसमें
आधा
हिरण
कहाँ
है?

कृष्ण कुमार
चित्रः तापस गुहा

आदित्य और अमित दोनों उस दिन स्कूल के फाटक में घुसते समय घबरा रहे थे। नए प्रिंसिपल मान्धाता प्रसाद सिंह का नाम सुनकर सब डर गए थे और इस स्कूल का प्रिंसिपल बनते ही उन्होंने कुछ डरावने काम कर भी डाले थे। इनमें देर से आने वाले लड़कों पर सख्त कार्रवाई करना शामिल था। देरी का कारण कुछ भी हो, सबसे पहले प्रिंसिपल के ऑफिस के बाहर बैठकर इन्तज़ार करना ज़रूरी था। वहाँ हर कक्षा के दो-तीन लड़के खड़े-खड़े प्रिंसिपल साहब का इन्तज़ार करते थे। वहाँ खड़े होकर प्रार्थना-सभा की एक-एक बात कानों में सुई जैसी चुभन के साथ सुनाई देती थी। 'दया कर दान भक्ति का' जैसी पंक्ति हो या आँख खोल कर गाने वाले बच्चों के हाथों पर पड़ रहे बेंत की सटाक्-सटाक्, हर आवाज़ आने वाले संकट की चेतावनी देती हुई लगती थी। प्रार्थना-सभा पूरी करके प्रिंसिपल साहब अपने ऑफिस में लौटते, उनका चपरासी दरवाज़े का पर्दा खींचता और एक-एक करके देर से आने वाले लड़के अन्दर जाना शुरू करते। किसी के गालों पर चाँटा पड़ने की आवाज़ आती तो किसी की पीठ पर मुक्के की, तो किसी-किसी के रोने की।

आदित्य और अमित इसी लाइन में शामिल होने के लिए प्रिंसिपल के ऑफिस पहुँचे तो उनके चपरासी ने बताया, "आज की छुट्टी हो गई है, कोई बड़ा आदमी मर गया है।"

अमित का चेहरा एक बड़ी-सी मुस्कान छिपा न सका। आदित्य ने इशारे से आगाह किया। दोनों भाई तेज़ कदमों से वापस स्कूल के फाटक पर पहुँचे और एक शब्द बोले बगैर फाटक के बाहर खड़ी साइकिलों की कतार से अपनी-अपनी साइकिल निकालने लगे। स्कूल के बाकी लड़के अभी प्रार्थना-सभा में उस आदमी के बड़े-बड़े कामों के बारे में सुने जा रहे थे, जिसकी मृत्यु के कारण स्कूल की छुट्टी घोषित हुई थी।

साइकिलों पर सवार दोनों लड़कों ने तेज़ रफ्तार से बस स्टैण्ड की चारदीवारी का चक्कर लगाया। अमित की

साइकिल का ब्रेक थोड़ा-सा लटक कर पहिए के रिंग से चिपकने लगा था, इसलिए वह पूरा ज़ोर लगाने पर भी तेज़ी से नहीं भागती थी। वह हाँफते हुए आदित्य के बराबर पहुँचने की कोशिश करता था, पर कुछ पीछे बना रहता था। आधा घण्टा साइकिलों पर घूमकर वे घर की ओर

मुड़े। दोनों को पता था कि घर पर कोई नहीं होगा और चाबी सामने वाले बरामदे में पड़ी ईंटों की कतार में तीसरी ईंट के नीचे पड़ी होगी। पिताजी और मम्मी के चले जाने के बाद दीदी कॉलेज जाने के लिए घर का ताला लगाती थी और चाबी तीसरी ईंट के नीचे रख देती थी।

सबसे पहले घर लौटने वाली मम्मी के आने में अभी कम से कम पाँच घण्टे की देर थी। आदित्य ने ताला खोला, साइकिलें आँगन की खिड़की से टिकाकर बस्ता अपनी मेज़ के नीचे धकेला और वहाँ रखी फुटबॉल उठाई।

"हवा?" अमित ने पूछा। वह इसी तरह एक-एक शब्द के वाक्य बोलता था।

"हवा भरते हैं..." आदित्य ने कहा। "तुम कसकर पकड़े रहना।"

यह बात अमित कई बार सुन चुका था इसलिए वह जानता था कि उसे क्या करना होगा। आदित्य के पिछले जन्मदिन पर उसे असली फुटबॉल मिली थी, पर उस समय किसी को नहीं मालूम था कि फुटबॉल में हवा भरने का पम्प अलग होता है। घर पर साइकिल वाला पम्प था हालाँकि उसका वाशर पुराना पड़ जाने से कुछ सिकुड़ गया था। इसलिए उससे हवा भरने में ज़्यादा मेहनत करनी पड़ती थी। जब इस पम्प से फुटबॉल के ब्लैडर में हवा भरने की कोशिश की गई तो शुरू-शुरू में काफी मुश्किल हुई क्योंकि पम्प का हैंडिल नीचे लाने पर जितनी हवा ब्लैडर में जाती थी, लगभग उतनी ही हैंडिल ऊपर लाने में निकल जाती थी। यह समस्या तब जाकर दूर हुई जब अमित ने ब्लैडर की गर्दन कसकर दबाई और हवा को वापस पम्प में नहीं जाने दिया। आदित्य पम्प का हैंडिल चला रहा था। पाँच-छः बार चलाने पर हवा ब्लैडर में भर गई और फुटबॉल फूलकर सख्त हो गई। अब दोनों ने मिलकर ज़ोर लगाया और ब्लैडर की लम्बी गर्दन को फुटबॉल के मुँह में दबाकर ऊपर बने छेदों में फीते को किसी तरह पिरोया। शुरू के दिनों में यह काम काफी मुश्किल से पूरा होता था, धीरे-धीरे अभ्यास हो गया।

फुटबॉल उस दिन खाली नहीं थी, पर हवा भरना ज़रूरी था। जब हवा कसकर भर गई तो पहली किक आदित्य ने लगाई। अमित आँगन के दूसरे सिरे पर पहुँचा। वहाँ से किक लगाने पर फुटबॉल कमरे में घुस गई। आदित्य कुछ घबराकर अन्दर गया क्योंकि इस कमरे में रेडियो रखा था। सबसे पहले उसकी नज़र रेडियो पर ही गई। लाल रंग के रेडियो पर कपड़े का कवर ज़रूर चढ़ा था, पर फुटबॉल से रेडियो उलट सकता था। आदित्य ने देखा कि रेडियो आराम से बैठा है तो उसे तसल्ली हुई। फुटबॉल रेडियो की तरफ गई तक नहीं थी और मेज़ के नीचे पड़ी थी। उसे उठाकर बाहर लाते समय आदित्य ने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके बाहर से कुंडा लगा दिया।

अमित अभी तक इन्तज़ार में खड़ा था। आदित्य की ताज़ा किक से फुटबॉल आँगन के आसमान में उछलती हुई अमित के सिर के पास पहुँची और उसने अपने माथे से ही किक लगाई। स्कूल में उसने बड़े लड़कों को इस तरह सिर से किक लगाते देखा था। पैर से ज़्यादा मज़ा सिर से किक लगाने में आया और फुटबॉल वापस आदित्य के पास जा पहुँची।

आदित्य ने फुटबॉल अमित की तरफ मारी और अमित ने आदित्य की तरफ। फुटबॉल आराम से आँगन के आर-पार दौड़ती रही। काफी देर तक दोनों खिलाड़ी सचेत रहे कि इनके पैर ज़्यादा ज़ोर की चोट न करें और फुटबॉल को उड़ने न दें। आँगन की ज़मीन पर बिछे हुए पत्थरों में कई जगह काई लगी थी। बारिश का मौसम पूरा हुए अभी दो-तीन हफ्ते ही बीते थे, इसलिए काई सूख नहीं पाई थी। फुटबॉल पत्थरों पर किसी चिकने पहिए की तरह चुपचाप लुढ़क रही थी। तभी एक कौवा आँगन की दीवार पर आया और ऊँचे स्वर में बोला, "काँव! काँव!" उस क्षण फुटबॉल आदित्य की तरफ आ रही थी। कौए की आवाज़ से वह चौंका और दो कदम उछलकर उसने अपनी तरफ आती

(शेष पेज 56 पर जारी)

नींद की नदी में सपनों के पुल से गुज़रती है रेलगाड़ी

मनोज कुमार
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

(पेज 53 का शेष)

हुई फुटबॉल को ताकत लगाकर कौए की तरफ किक लगाई। फुटबॉल उछली, कौवा उड़ा, और फुटबॉल दीवार लाँघकर पीछे की गली में गिरी। आदित्य ने दौड़कर पिछवाड़े के दरवाज़े की साँकल खोली।

"चलो, बाहर खेलेंगे।" उसने कहा।

अमित दरवाज़े के पास खड़ा था। वह दरवाज़े को भेड़ता हुआ बाहर जा पहुँचा। गली सूनी थी। इसलिए खेलना आसान था। अमित अब आदित्य से काफी दूर खड़ा हुआ जिससे फुटबॉल को कुछ लम्बा सफर करने को मिले। अब यह ज़रूरी था कि किक ध्यान से लगे ताकि फुटबॉल गली की ज़मीन से लगी रहे, वरना उछलकर वह दोनों तरफ बने घरों में जा गिरती।

हवा का हल्का-सा झोंका आया। उसके साथ एक सफेद पन्नी गली की सतह से लगी-लगी उड़ी और फुटबॉल के रास्ते में आई। उसे देखकर अमित को बड़ा मज़ा आया और उसने फुटबॉल को छोड़कर पन्नी को मारा। पन्नी उड़ती हुई आदित्य की तरफ भागी। वह आगे बढ़ा और पन्नी को पकड़कर बोला,

"फुटबॉल लाओ, इसके अन्दर डालते हैं।"

अमित ने फुटबॉल उठाई। आदित्य ने पन्नी का मुँह खोला और फुटबॉल उसमें घुसा दी। दोनों हँसने लगे। अब फुटबॉल से खेलना और सरल हो गया क्योंकि वह तेज़ी से नहीं लुढ़क सकती थी। उसे पैर से मारने पर 'झर-झर' की आवाज़ निकलती थी। ज़ोर से किक लगाने पर भी वह ज़्यादा ऊँचा नहीं उछलती थी। गली में खेलने के लिए वह एक आदर्श फुटबॉल बन गई थी। एक गाय गली से गुज़री। फुटबॉल उसकी टाँगों के नीचे से निकली, फिर गाय की पिछली टाँगों से टकराकर वापस भी आई।

दूर से एक घण्टी की आवाज़ आई। आदित्य फुटबॉल उठाकर खड़ा हो गया। उसे एहसास हुआ कि खेलते-खेलते काफी समय हो गया है। माथे पर हल्का-सा पसीना पोंछते हुए उसने अमित को बुलाया।

"कुल्फी खाते हैं", उसने कहा।

अमित कुल्फी का नाम सुनते ही खुश हो गया। उसे एकदम चिन्ता हुई कि कुल्फी वाले की घण्टी पास आने से पहले पैसे मिल जाएँ। दोनों को मालूम था कि चिल्लड़ मम्मी रसोई में गरम मसाले के पास रखती हैं। रसोई की मेज़ पर दीवार से सटे हुए छोटे-छोटे गोल डिब्बों की कतार चूल्हे से ज़्यादा दूर नहीं थी। आदित्य ने तीन डिब्बे उठाकर हिलाए। पहले से कोई आवाज़ नहीं निकली, दूसरे से छोटे बीजों की आवाज़ निकली और तीसरे से बड़े बीजों की आवाज़। मगर चौथा डिब्बा हिलाया तो साफ-साफ ऐसी आवाज़ निकली जो सिर्फ सिक्कों को हिलाने से निकल सकती है। डिब्बा खोलने के लिए चम्मच ढूँढना

ज़रूरी था। उधर गली में घण्टी की आवाज़ एकदम घर के पीछे पहुँच गई लगती थी। अमित अभी तक रसोई के दरवाज़े के पास खड़ा आदित्य की तरफ देख रहा था। घण्टी की आवाज़ बढ़ती देखकर वह पीछे भागा। दरवाज़ा खुला था। भागकर अमित गली में जा पहुँचा। फुटबॉल उसके हाथों में थी। कुल्फी वाले का ठेला सिर्फ आठ-दस कदम दूर रह गया था। अमित चिल्लाया, "रुको-रुको कुल्फी लेनी है।"

कुल्फी का ठेला खड़ा हो गया। तोलाराम कुल्फी वाला गली के हर बच्चे और बड़े को जानता था। कौन कब घर पर होता है, उसे अच्छी तरह पता था। अमित को देखकर उसने ठेला रोका और पूछा, "आज स्कूल नहीं गए?"

"गए थे, पर छुट्टी हो गई!" अमित ने जवाब दिया।

"किस बात की छुट्टी?" तोलाराम ने पूछा।

"पता नहीं", अमित ने जवाब दिया। उसे कुल्फी की जल्दी हो रही थी। तब तक आदित्य भी ठेले के पास पहुँच गया था। उसका दायाँ हाथ निकर की जेब में था, जिसका मतलब था कि वह पैसे निकाल कर लाया है।

"आजकल स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती।" तोलाराम ने कहना शुरू किया, "बात-बात पर छुट्टी, जब देखो छुट्टी!" फिर सिर खुजाते हुए बोला, "छुट्टी न हो तो भी पढ़ाई कहाँ होती है... बच्चों को खिलाते रहते हैं! ऐसे स्कूल का क्या फायदा?"

आदित्य और अमित ठेले से सटे खड़े थे। वे इन्तज़ार कर रहे थे कि ठेले पर रखा लाल बक्सा खुले और वे कुल्फी लेकर भागें। तभी तोलाराम ने बक्से के ऊपर रखी
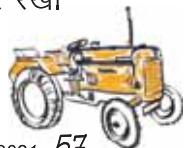
घण्टी ज़ोर से बजाई। अमित और आदित्य थोड़ा घबरा गए कि घण्टी की आवाज़ सुनकर गली में रहने वाला कोई बड़ा न बाहर निकल आए। वैसे घबराने की कोई बात नहीं थी क्योंकि स्कूल में सचमुच छुट्टी हुई थी, फिर भी पड़ोसियों की पूछताछ से बचना ही भला!

आखिरकार आदित्य ने लाल बक्से पर हाथ रखकर कहा, “हमें पाँच रुपये वाली दो चाहिए।”

तोलाराम ने बक्सा खोला। दोनों ने उसके भीतर झाँका खुशबू से भरा ठण्डक का झोंका आया। तोलाराम ने दो कुल्फियाँ सावधानी से निकालीं और अमित को थमाईं। आदित्य ने हाथ निकर की जेब से निकाला। उसकी मुट्ठी में कई सिक्के थे। तोलाराम की घण्टी सुनकर उसने जल्दी-जल्दी कई सिक्के मम्मी के डिब्बे से निकाल लिए थे। अब उन्हें हथेली पर रखकर गिना तो तीन सिक्के दो रुपए वाले निकले, दो एक-एक रुपये के और पाँच पचास पैसे वाले। तोलाराम को दस रुपये दिए और पचास पैसे का एक सिक्का अपनी हथेली में भींच लिया।

एक बार फिर घण्टी बजा कर तोलाराम ने ठेले को आगे बढ़ाया। अमित और आदित्य घर में वापिस आए। रसोई से बने हुए बरामदे में दो चौकियाँ पड़ी थीं। उस पर बैठकर दोनों ने कुल्फी खाई। कुल्फी की डंडी चूसते हुए आदित्य को ध्यान आया कि पैसों का डिब्बा खुला पड़ा है। वह उसे बन्द करने रसोई में गया। इधर अमित कुल्फी की डंडी हाथ में लिए-लिए फुटबॉल पर खड़ा होने की कोशिश कर रहा था। उसने फुटबॉल को पैर से उछाला। फुटबॉल की आवाज़ सुनकर आदित्य रसोई से निकल आया। दोनों आँगन में खेलने लगे। आदित्य को ध्यान आया कि बचे हुए पचास पैसे का सिक्का अभी उसके हाथ में ही है। वह उसे डिब्बे में वापस डालना भूल गया था। अब फुटबॉल खेलने की धुन में उसने सिक्के को जेब में डालने की जगह मुँह में डाल लिया और जीभ से बाएँ गाल की तरफ धकेल दिया। उसे सिक्के को मुँह में सम्भालकर रखने का अच्छा खासा अभ्यास था।

फुटबॉल को पन्नी से निकालकर आँगन के एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ मारने का खेल पूरी ताकत से चालू हो गया। सूरज अब आँगन से हटने लगा था। तिरछी धूप दोनों को भा रही थी। कुल्फी खाने से मिली ठंडक का मज़ा अभी जीभ और होंठों पर महसूस हो रहा था। फुटबॉल आराम से लुढ़क रही थी। दोनों को उसे उछालने की इच्छा नहीं थी। अचानक आदित्य फुटबॉल से अपनी टाँग खींचकर ज़मीन पर लुढ़क गया। अमित ने उसे गिरते हुए देखा तो बुरी तरह घबरा गया। वह कूदकर आदित्य के पास आया तो देखा, आदित्य का चेहरा भिंचा जा रहा है। आदित्य की आँखें तन-सी गई थीं। अमित ने आदित्य को उठाने की कोशिश की तो आदित्य का हाथ गर्दन और मुँह की तरफ बढ़ा। वह कुछ बोल नहीं पा रहा था पर मुँह खोलकर हाथ जीभ की तरफ बढ़ा रहा था।

अमित को अचानक पचास पैसे के सिक्के की याद आई जो तोलाराम को कुल्फियों के पैसे देते समय बच गया था। अमित ने आदित्य को सिक्का मुँह में डालते देखा था। वह कई बार आदित्य को ऐसा करते पहले भी देख चुका था। एक बार मम्मी ने उसे सिक्का मुँह मे डालते देख लिया था और काफी डाँटा था। यह चेतावनी भी दी थी कि अगर उसने आगे भी ऐसा किया तो वे पापा को बता देंगी। इस धमकी के बावजूद आदित्य की आदत गई नहीं थी।

अमित ने आदित्य को पूरा ज़ोर लगाकर ज़मीन पर उल्टा लिटा दिया। आदित्य उठने की कोशिश करता रहा पर अमित उसकी पीठ पर बैठ गया। वह आदित्य से दो साल छोटा था, पर इस समय उसे लग रहा था कि वह आदित्य से बहुत बड़ा है और ताकत में भी ज़्यादा है। पीठ पर बैठकर उसने आदित्य की गर्दन के पीछे वाले हिस्से पर मुट्ठी से तीन-चार बार प्रहार किया। आदित्य के मुँह से 'आ-आ' की आवाज़ निकली और वह पलटने लगा। अमित उसकी पीठ से हट गया। आदित्य ने बैठकर मुँह खोला

और सिक्के को थूक दिया। सिक्का आँगन के पत्थरों पर खनखनाता हुआ लुढ़का, फिर कुछ दूर जाकर रुक गया।

आदित्य उठा और सिक्के को जेब में डालकर अमित की तरफ देखकर मुस्कराया। अमित बोला, "इसे मम्मी के डिब्बे में डाल दो।"

"ठीक है," आदित्य ने कहा। फिर एक क्षण सोचकर बोला, "चलो, पार्क में चलकर खेलते हैं।"

सिक्का मम्मी के डिब्बे में डालकर आदित्य ने रसोई का दरवाज़ा बन्द किया। फिर आँगन के फर्श से फुटबॉल उठाई। दोनों बाहर आ गए। अपनी-अपनी साइकिल उठाकर सड़क पर लाए और अमित ने लौटकर घर का ताला लगाया। चाबी जिस ईंट के नीचे रखी मिली थी, वहीं रख दी।

तेज़-तेज़ साइकिल चलाकर दोनों पार्क के फाटक पर पहुँचे। फाटक हमेशा बन्द रहता था मगर उससे सटी हुई एक ऊँची-सी खिड़की खुली रहती थी। इस खिड़की के भीतर जाने के लिये साइकिल को कंधे तक उठाना पड़ता था। अन्दर पहुँचकर उन्होंने देखा कि पार्क सूना पड़ा है। गाँधी जी की मूर्ति के चारों तरफ लगी तार पर कपड़े सूख रहे थे। मूर्ति के पीछे खुले मैदान पर बारिश के मौसम में बने उथले गड्ढे सूखे पड़े थे।

मैदान में अमित दौड़ते हुए घुसा। उसने फुटबॉल को ज़मीन पर रखकर पूरी ताकत से लात मारी। गेंद ने ऊँची कूद लगाई। जब वह नीचे आने ही वाली थी, आदित्य ने आगे बढ़कर हवा में पैर उछालकर ज़ोर की किक लगाई। फुटबॉल नीले आसमान में जा पहुँची और काफी समय लेकर आधा मैदान पार करके नीचे आई। अमित भागकर वहाँ पहुँच चुका था पर फुटबॉल को ज़मीन पर गिरने से न रोक सका। ज़मीन पर इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण उसने ऊँचा टप्पा खाया। अमित इस बार नहीं चूका। उसने उछली हुई गेंद को आदित्य की तरफ दे मारा। दोपहर का खेल अब जाकर कायदे से शुरू हुआ।

चित्रकला के जन्म की एक कहानी

राजा भयजीत की कहानी जो नग्नजीत हो गया था

उदयन वाजपेयी
चित्रः तापोशी घोषाल

यह कहानी भारत के महान दार्शनिक नवज्योति सिंह ने सुनाई थी। उन्होंने यह कहानी 'चित्र दर्शनम' के हिन्दी अनुवाद में पढ़ी थी। इस कहानी के हिन्दी अनुवाद में आने तक की एक दिलचस्प कहानी है। यह एक कहानी के अपनी भाषा से दूसरी भाषाओं में भटककर दोबारा अपनी भाषा में आने की कहानी है। यह कहानी सबसे पहले संस्कृत में लिखी गई थी।

कई शताब्दियों पहले भारत की कई पुस्तकों का संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनुवाद होना शुरू हुआ था। तिब्बत के विद्वान भारत आया करते थे। और यहाँ की कई पुस्तकों के तिब्बती में अनुवाद करके तिब्बत ले जाते थे। यह सिलसिला करीब बारह सौ साल पहले शुरू हुआ था और कई सदियों तक चलता रहा। इस कारण तिब्बत में संस्कृत की हज़ारों पुस्तकों के तिब्बती भाषा में हुए अनुवाद इकट्ठा हो गए। जब संस्कृत की ये पुस्तकें भारत में मिलना बन्द हो गईं, वे पुस्तकें केवल तिब्बती अनुवादों में ही जीवित रही आईं। 'चित्र दर्शनम' भी ऐसी ही पुस्तक थी जो भारत में मिलना बन्द हो गई थी लेकिन तिब्बती अनुवाद में बची रही। करीब अस्सी-नब्बे वर्ष पहले 'चित्र दर्शनम' का तिब्बती भाषा से जर्मन में अनुवाद किया गया। जब इसका नाम अँग्रेज़ी बोलने वालों के बीच फैला, उन्होंने इसका जर्मन से अँग्रेज़ी में अनुवाद कर लिया। कितनी अजीब बात है कि इसका अनुवाद फिर अँग्रेज़ी से दोबारा संस्कृत में हुआ। इस तरह यह पुस्तक संस्कृत से तिब्बती, तिब्बती से जर्मन, जर्मन से अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ी से दोबारा संस्कृत में लौट आई। इतनी सारी भाषाओं से गुज़र कर किसी पुस्तक का दोबारा अपनी मूल भाषा में आना बहुत कम होता है। संस्कृत से इसका अनुवाद हिन्दी में हुआ जिसे नवज्योति सिंह ने पढ़ा और उसे सरल भाषा में मुझे सुनाया। मैं उसे कुछ और सरल बनाकर आपको सुना रहा हूँ-

एक राजा था। उसे किसी चीज़ से डर या भय नहीं लगता था। वह न अँधेरे कमरे में जाने से डरता था, न पेड़ पर चढ़ने से। वह न साँप से डरता था, न घोड़े पर सवारी करने से। वह न जंगल में अचानक सामने आ गए शेर से डरता था, न भालू से। उसने भय को जीत लिया था, सो उसका नाम भयजीत पड़ गया था। उसके राज्य में सब कुछ नीति से होता था। लोग एक-दूसरे से वैसा ही व्यवहार करते थे जैसा उन्हें करना चाहिए था। सभी लोग अपना जीवन अपनी ज़रूरतों के अनुसार बिताते थे। वे दूसरों को देखकर न जलते थे, न उनसे होड़ लगाते थे। शायद यही कारण था कि राजा भयजीत के राज्य में कोई भी आदमी या औरत समय से पहले नहीं मरता था। सब लोग अपनी पूरी उम्र जीने के बाद ही संसार से जाते थे। अचानक या कम उम्र में कोई भी शरीर नहीं छोड़ता था।

एक बार भयजीत अपने घर में टहल रहे थे कि एक आदमी उनके पास आया। वह अपने हाथों में बच्चे को उठाए था। भयजीत को समझ में नहीं आया कि यह आदमी

एक बच्चे को इस हालत में उसके पास क्यों लाया है। उस आदमी ने रोते हुए बच्चे को साफ़-सुथरे फर्श पर लिटा दिया।

राजा भयजीत बोले, "तुमने यह प्यारा बच्चा फर्श पर क्यों लिटाया है?"

आदमी बोला, "मेरा यह बच्चा इस छोटी उम्र में मर गया है। तुम्हारे राज्य में ज़रूर कोई अनीति हुई है!"

भयजीत बच्चे को देखकर दुखी हो गए। आँखों में आँसू भरकर उसके पिता से बोले, "आपको पता है कि क्या अनीति हुई है? अनीति कहाँ हुई है?" आदमी चुपचाप राजा की ओर देखता रहा। फिर अपने बच्चे की ओर देखकर बोला, "राजन, तुम खुद पता लगाओ और मेरा बच्चा मुझे वापस लाकर दो।"

राजा ने राज्य में चारों ओर कर्मचारियों को भेजा। वे लौटकर आए और बोले, "अनीति कहीं नहीं हुई है। राज्य में सभी लोग नीतिपूर्वक जी रहे हैं।"

राजा भयजीत ने फर्श पर लेटे बच्चे और उसके पिता को देखा और सोच में पड़ गए। कुछ ही पलों में उन्होंने रास्ता खोज निकाला।

राजा भयजीत ने उसी दिन यमलोक पर हमला कर दिया। यमलोक को परलोक भी कहा जाता है। यमलोक में बिना शरीर के लोग रहते हैं। उन्हें नग्न कहा जाता है। यमराज की ओर से लड़ रही नग्नों की सेना जल्दी ही भयजीत से हार गई। उसी समय से राजा भयजीत नग्नजीत कहलाने लगे। हारने के बाद यमराज राजा भयजीत के पास आकर बोले कि उनके राज्य में असमय मरे बच्चे की मृत्यु का कारण वे नहीं हैं। मेरा काम तो सिर्फ ब्रह्मा के आदेशों का पालन करना है। आपको कोई शिकायत है तो ब्रह्मा से कहिए।

राजा भयजीत (जो अब राजा नग्नजीत हो चुके थे) ने

यमराज से क्षमा माँगी और ब्रह्मा के पास चल दिए।

राजा नग्नजीत के आते ही ब्रह्मा समझ गए कि वो यहाँ क्यों आए हैं। पर वे चुप रहे आए। राजा बोले, “हमारे राज्य में सब कुछ नीति से चलता है फिर भी आपने मेरे राज्य के एक बच्चे के प्राण बिना किसी कारण ले लिए हैं। मैं उस बच्चे के प्राण वापस लेने आया हूँ।”

ब्रह्मा अपने सहयोगी चित्रगुप्त से बोले, “क्या यह राजा ठीक कह रहे हैं?”

चित्रगुप्त ने जीवन मरण का बही-खाता देखकर ब्रह्मा को बताया, “राजा ठीक कह रहे हैं। हमसे गलती हो गई है।” यह सुनकर राजा नग्नजीत बोले, “आप मुझे बच्चे के प्राण वापस कर दीजिए। मैं वापस लौट जाऊँगा।”

ब्रह्मा के चेहरे पर परेशानी की रेखाएँ खिंच गईं। वे कुछ देर सोचकर बोले, “हम तुम्हारे राज्य के बच्चे के प्राण उसके उसी शरीर में वापस नहीं कर सकते जिसमें वह अब तक जीता रहा था।”

“तब क्या किया जाए, आप ही उपाय सुझाइए।” भयजीत बोले।

ब्रह्मा सिर झुकाकर कुछ देर सोचते रहे। ऐसी समस्या उनके सामने पहली बार आई थी। कुछ देर बाद उन्होंने सिर ऊपर उठाया और मुस्कराते हुए बोले, “राजन, तुम उस बच्चे के लिए कोई और शरीर बनाओ तो मैं तुरन्त उसके नए शरीर में प्राण डाल दूँगा।”

राजा नग्नजीत ने विचार किया और ब्रह्मा से आग्रह किया कि वे उनके लिए बहुत सारे कागज़ और रंग बुलवा दें। कागज़ और रंग आने के बाद राजा ने बड़ी मेहनत से उस बच्चे का एक चित्र बनाया। वह संसार का पहला चित्र था। ब्रह्मा ने उस चित्र को देखा और उसमें बच्चे के प्राण फूँक दिए।

इस तरह चित्रकला का जन्म हुआ।

(पेज 43 का शेष)

वो तो दो-तीन दिन से यहीं डोलते दिखा था। छतरसिंह ने बताया फसल कटे काफी समय हो गया। चूहा-चबैना कुछ नहीं है सो बिलाव ने महोका पर दाँव लगाया। ये देखो उसी के पंजे के निशान हैं।

जब तक महोका महुए के ऊँचे पेड़ पर बैठता था, बिल्ली की पहुँच से बाहर था। करंज के छोटे पेड़ पर बैठे महोका को पकड़ना उसके लिए आसान रहा होगा।

आसपास घूमकर तफ्तीश की तो महोका के खून से सने अवशेष मिले। छोटे-छोटे लाल चींटे उन पर चिपके हुए थे। काफी हिस्से वे वहाँ से ले जा चुके थे। मेरे कौतूहल को देखकर छतरसिंह ने बताया कि जंगल में रात भर ऐसी ही रोमांचक घटनाएँ चलती रहती हैं। सुबह जल्दी इधर आ निकलो तो उनके सबूत मिल जाएँगे। दिन चढ़ आने के बाद कुछ भी पता नहीं चलता। मेरे जैसा दूरबीन से चिड़ियाँ देखने वाला शहरी आदमी यही कयास लगाता कि महोका जाड़े के प्रवास पर दक्षिण की ओर निकल गया होगा।

मक्तूल की लाश, कत्ल का हथियार और मकसद सब साफ था। एक सनसनीखेज़ वारदात की जाँच मिनटों में पूरी हो गई थी। मैं चकित होकर छतरसिंह की ओर देखने लगा। झबरीली मूँछों के नीचे से उसकी देहाती मुस्कुराहट कह रही थी- एलिमेंटरी माई डियर वॉटसन। (यानी सीधी-सी बात है साब जी)

टिफिन दोस्त

सुशील शुक्ल
चित्रः प्रिया कुरियन

वो जो सारा की बच्ची है
अभी उससे दोस्ती कच्ची है
कल मेरे पास कचौड़ी थी
आज उसके टिफिन में मच्छी है

वह शोर क्लास में करती है
और कच्चौड़ी पर मरती है
और मेरे मुँह में पानी है
किसी तरहा मछली खानी है

यार राशिद तुम तो लक्की हो
मेरी तुमसे दोस्ती पक्की हो
मैं चिकिन के वास्ते बोला नहीं
तुम बेवजहा ही शक्की हो

राशिद सारा और मैं विक्रम
और मेरी खाने की तिकड़म
मैंने चिकन और मच्छी खाई
उस पर ककड़ी कच्ची खाई
मेरे टिफिन में भरवाँ करेले थे
उनमें वो दोनों फसेल्ले थे

राशिद को चिकन नहीं भाता
ये काश अगर यूँ हो पाता
वो मेरे घर पैदा होता
और मैं उसके घर हो जाता

कोई बात नहीं

शम्सुर्रहमान फारुकी
चित्रः तापोशी घोषाल

दाँत बड़े हों
तो भी कोई बात नहीं
कान खड़े हों
तो भी कोई बात नहीं
डाँट पड़ी हो
तो भी कोई बात नहीं
धूप कड़ी हो
तो भी कोई बात नहीं
ऊधम बड़ा हो
तो भी कोई बात नहीं
कोई लड़ा हो
तो भी कोई बात नहीं
बच्चों को घर में आने दो
धूमें उनको खूब मचाने दो

आने वाले समय में नई-नई बातें, अनुभव पेश आएँगे। तुम्हें लगेगा जीवन बहुत खूबसूरत है। इसी सिलसिले में क्या पता तुम्हारे हाथ कभी शम्सुर्रहमान फारुकी साब का लिखा एक नॉबिल - कई चाँद थे सरे आसमाँ - लग जाए। उन्होंने हमें दुनिया को समझने के कई दरीचे खोले। एक दरवाज़ा मीर की कविता को समझने का भी है। बीते माह तक अलग बात थी, मगर अब हम उनसे उनकी लिखाई के ज़रिए ही मिल सकेंगे।

इश्तेहार

मयंक टण्डन
चित्रः प्रोइति रॉय

मैंने तितली से पूछा कि वो मुझे अपने पंख पर बिठाके ले जाएगी। वो बोली, "ले तो जाऊँगी, लेकिन एक पंख पर तुम बैठोगे तो दूसरे पंख पर भी तुम्हारे जितने वज़न वाले किसी दोस्त को बैठा लेना इससे बैलेंस बना रहेगा।"

अगर आपको भी तितली के पंख पर सैर करने का मन हो, और वज़न सैंतीस किलो दो सौ बावन ग्राम हो, तो तुरन्त मुझसे सम्पर्क करें।

आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

धान लगाई है
अबकी खेत में हमने
अपनी जान लगाई है।

चित्रः तापोशी घोषाल

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
तक्षशिला पब्लिकेशन - तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी
की इकाई के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़, शेड नम्बर 92,
डी.एस.आई.डी.सी. ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1,
नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404,
बेसमेंट, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित
सम्पादक - सुशील शुक्ल